ओ३म्

मार्कण्डेय पुराण

[एक सरल समीक्षा]

प्रणेता :—

श्री डा० शिवपूजनसिंह 'कुशवाहा'

एम० ए० (संस्कृत)

सम्पादक—

ईश्वरी प्रसाद 'प्रेरक' एम० ए०

साहित्यरत्न, सिद्धान्त शास्त्री

[सम्पादक—'तपोभूमि' मासिक, मथुरा]

प्रकाशक:—

सत्य प्रकाशन

वृन्दावन मार्ग मथुरा।

प्रथम बार ११०० | वैशाख २०२८ दयानन्दाब्द १४७ | मूल्य ६० न० पै०

स्वामी विश्वानन्द दण्डी

सन्दर्भ पुस्तकालय

ग्रहण क्रमांक 2184

सम्पादकीय

१५ अगस्त १९४७ के पहले हमारे देश में जो दुःख-दारिद्र्य और कष्ट-क्लेश था, उसके लिए हम अंग्रेजों को दोषी ठहराते थे। बड़े अंशों में ठीक भी था, यह। पर आज जो हमारे अपने देश में दुःख-दैन्य है, जो टीस और कराह है, इस सबका कारण क्या है ?

आज तो अँग्रेज हमारा राजा नहीं है, हम उसे दोषी नहीं ठहरा सकते। पर जब दर्द और कराह है, वेदना है, आँसू हैं तो इस सबका कारण अवश्य है। और वह कारण है—चरित्रहीनता अथवा इन्सानियत (मनुष्यता) का अकाल।

अकाल ! कौन कहता है कि हमारे देश में अन्न, कपड़ा, मकान, सड़क, स्कूल और अस्पतालों का अभाव है ? नहीं, इनमें से कोई चीज कितनी ही कम मात्रा में हो, पर सच में इनमें से किसी भी चीज का अभाव नहीं है। हाँ, अकाल है अवश्य। वह अकाल है—इन्सानियत से युक्त इन्सान का, मनुष्यता से युक्त सच्चे मानव का। तो आज की प्रमुखतम समस्या है—दृढ़ चरित्र सम्पन्न श्रेष्ठ मानव का अकाल !

दृढ़ चरित्र की आधारशिला है—धर्म। क्या वही धर्म जिसने मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद की दीवाल खड़ी की है ? क्या वही धर्म जिसका अर्थ है—किसी प्रकार का पूजा-पाठ, अन्ध-विश्वास, रूढ़ियाँ और गुरुडम ? निश्चय ही नहीं ? तब प्रश्न है—धर्म क्या है ? एक शब्द में धर्मतत्व मानवता का प्राण है।

धर्म तत्त्व वह है—जो इन्द्रियों के इन्द्रजाल को चीरकर हमें हमारे अन्तर की महत्ता का पता देता है। सद्धर्म में श्रद्धा (हृदय तत्व) और मेधा (बुद्धि तत्व) का समन्वय है। धर्म उस शाश्वत सत्य (Eternal truth) का नाम है, जो दो और दो=चार की तरह

सब कालों, सब देशों और सब भाषाओं में एक है। तो धर्म एक है, अनेक नहीं। इस एक सद्धर्म को हम मानव-धर्म, विश्व-धर्म, सार्वभौम धर्म या वैदिक धर्म किसी भी नाम से सम्बोधित कर सकते हैं।

फिर यह अनेक धर्म क्यों ? बन्धु, ये धर्म नहीं—मत हैं, पन्थ हैं, सम्प्रदाय हैं। धर्म का आधार ईश्वर है, जबकि मत-पन्थों का आधार जरुथस्त, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, कबीर, दादू, रामानुज, नामक आदि मनुष्य हैं।

इन मत-पन्थों में कुछ तो सत्य धर्म का अंश है, अधिकांश में असत्य और पाप है। धर्म के नाम से कहीं-कहीं तो पूरा-पूरा अधर्म और पाप का ही नङ्गा नाच है धर्म के नाम पर आज बाजार में शत-सहस्र दुकानें हैं। इन दुकानों पर सस्तेपन की होड़ में घोर से घोर अनृत और अनर्थ को धर्म के नाम से बेचा जाता है। इन दुकानों में से सत्य सनातन वैदिक धर्म को सर्वथा विकृत रूप से उपस्थित करने वाली हैं—१८ पुराणों की १८ दुकानें। इन दुकानों पर चरित्र, संयम, सदाचार, सद्भावों और सात्विकता को नष्ट-प्रनष्ट करने वाला कैसा महाभ्रष्ट सौदा बिकता है, इसकी बानगी आपको 'मार्कण्डेय पुराण' की इस अति संक्षिप्त समीक्षा से मिल सकेगी।

पुराणों में कुछ भी सत्यांश और ग्राह्य नहीं है, ऐसा हमारा आग्रह नहीं है। पुराणों के कई स्थल बड़े मनोरम, और शिक्षाप्रद भी हैं। इस समीक्षा के अन्त में ऐसे कतिपय अत्युपयोगी प्रकरणों को भी प्रस्तुत किया गया है। पर इन पुराणों का अधिकांश कितना असंगत, अश्लील, सृष्टि नियम विरुद्ध और ज्ञान-विज्ञान की कसौटी पर पूर्णतया असिद्ध है, यह इस समीक्षा से सुस्पष्ट हो जाता है। इस पुराण के भी कुछ स्थल तो इतने घृणित हैं जिन्हें विवश होकर ही सिर्फ इसीलिये देना पड़ा है जिससे भारतीय प्रजा अपने पतन और पराभव के मूल कारण—पुराणों की एक झांकी पाकर इन्हें 'धर्म-ग्रन्थ' कहने के पाप से बच सके।

राष्ट्र की प्रजा को धर्म का नाम लेकर दुराचारी बनाना स्पष्टतया राष्ट्र-द्रोह है। इतना ही नहीं, यह तो धर्म-द्रोह भी है, क्योंकि इससे बुद्धिजीवी वर्ग में ईश्वर और धर्म के प्रति अनास्था होना स्वाभाविक है। ऐसे ग्रन्थों को तो अश्लील ग्रन्थों की कोटि में अविलम्ब जब्त कर लेना चाहिये तथा इनका प्रकाशन और विक्रय कानूनन अपराध घोषित किया जाना चाहिये। यह सुनिश्चित है कि जब तक हम अधर्म को धर्म मानते रहेंगे, तब तक सच्चरित्रता, सदाचार और सत्य व्यवहार देश के नागरिकों में आना कदापि सम्भव नहीं, जिसके प्रभाव में देशोन्नति अथवा राष्ट्रीय सुख-शान्ति सर्वथा असम्भव है।

समाज या राष्ट्र अच्छा हो, इसके लिये जरूरी है कि राष्ट्र का हर घटक (नागरिक) अच्छा हो। व्यक्ति-व्यक्ति का चरित्र अच्छा हो। व्यक्ति की अच्छाई किसी बाहरी कानून से सम्भव नहीं, वह आत्म-नियन्त्रण, आत्म-संयम या धर्माचरण से ही सम्भव है। इसके लिये जरूरी है कि धर्म के नाम से प्रचलित हर वस्तु को हम अपने गले न उतार लें उसे विवेक व ज्ञान की कसौटी पर परखें और जो सत्य है उसको ग्रहण करें तथा जो असत्य है उसका त्याग करें। यह समीक्षा हम इसी जन-कल्याण एवं राष्ट्र-कल्याण की भावना से प्रेरित हो अपने प्रेमी पाठकों और सदस्य-बन्धुओं की सेवा मे प्रस्तुत कर रहे हैं। ईश्वर कृपा करें—असत्य का मुँह काला और सत्य का बोलबाला हो। जिस दिन ऐसा होगा, उसी दिन राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का पूरा उपयोग और सच्चा सुख-लाभ हम कर सकेंगे। आओ, बन्धु ! हम मत-पन्थों के माया-जाल से बचकर एकमेव वैदिक धर्म की शीतल छाँह का आश्रय लें और राष्ट्र-निर्माण एवं विश्व-मानवता का मार्ग प्रशस्त करें।

हम ऋणी हैं श्री आचार्य शिवपूजनसिंह जी कुशवाहा के जिन्होंने अत्यधिक श्रम से मानव के कल्याणार्थ इस पुण्यमयी समीक्षा को प्रस्तुत किया है।

—ईश्वरी प्रसाद 'प्रेम'

ओ३म्

मार्कण्डेय पुराण परिचय

(डा० शिवपूजनसिंह कुशवाहा एम० ए०)

'मार्कण्डेय पुराण' सप्तम पुराण है । इसमें जैमिनी पूछते हैं

(१) कि वेदव्यास ने वेद के अनुकूल सब शास्त्रों के मर्मों से युक्त महाभारत कहा है इसीके सम्बन्ध में हे मार्कण्डेय ! मैं आपसे तत्व जानने की इच्छा से पूछता हूँ कि निर्गुण परमात्मा वासुदेव जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण हैं मनुष्यत्व को किस प्रकार प्राप्त होते हैं ।

(२) पाँचों पाण्डवों की एक भार्या द्रौपदी कैसे हो गई ?

(३) तीर्थ यात्रा करते हुए बलभद्र ने किस प्रकार ब्रह्महत्या का उपाय किया ?

(४) द्रौपदी के पुत्र पाँच महारथ बिना विवाह किए हुए ही अनाथ की तरह किस प्रकार मारे गये ?

मार्कण्डेय ने स्वयं उत्तर न देकर विन्ध्य में द्रोणपुत्र पक्षियों के पास उत्तर जानने के लिए भेजा । धर्म पक्षियों ने जो उत्तर दिएं हैं उनका सविस्तर वर्णन इस पुराण में है ।

किसी भी वैदिक विद्वान् को चारों प्रश्नों के उत्तर समुचित नहीं लगेंगे । पौराणिक दृष्टिकोण से उत्तर समुचित हो सकते हैं ।

'मार्कण्डेय पुराण' के सम्बन्ध में अन्य पुराणों में लिखा है:—

"यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्मान्धर्म विचारणा
व्याख्याता वै भुविप्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारभिः,
मारकण्डेयेन कथितं तत्सर्वं विस्तरेणतु
पुराणं नवसाहस्त्रं मार्कण्डेय मिहोच्यते ।"
(मत्स्त्यपुराण ५३ । २६)

अर्थः—जिस पुराण में धर्मविज्ञ पक्षियों की कथा को आरम्भ करके धर्माचरण करने वाले मुनियों ने मुनि के किए हुए प्रश्नों के उत्तर में धर्म का विचार किया है। वह विस्तार से कहा हुआ ९०० (नवसहस्त्र) श्लोक वाला पुराण 'मार्कण्डेय' कहलाता है।

"यत्राधिकृत्य शकुनीन् सर्वधर्म्म निरूपणम् ।
मार्कण्डेयेन मुनिना जैमिनेः प्राक्समीरितम् ॥.....।'
(नारद पुराण+)

जिसमें शकुनियों को अवलम्बन करके मार्कण्डेय मुनि ने समस्त धर्मों का निरूपण किया है, वह मार्कण्डेय पुराण है।

"यत्र वक्ताऽभवत् खण्डे मार्कण्डेयो महामुनिः ।
मार्कण्डेय पुराणां हि तदाख्यातं च सप्तमम ॥"
(शिवपुराण, उत्तर खण्ड)

जिस पुराण में महामुनि मार्कण्डेय वक्ता हुए थे वही सप्तम मार्कण्डेय पुराण नाम से आख्यात है।

मेरे सामने पं० कन्हैयालाल मिश्र, मोहल्ला-दीनदार-पुरा, मुरादाबाद शहर निवासी कृत भाषाटीका सहित "मार्कण्डेय पुराण" १३४ अध्याय ; ३४८ पृष्ठ की है।

+ प० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत "अष्टादश पुराण दर्पण" पृष्ठ २०४-२०५ (संवत् १९९३ वि० बम्बई)

खुले पत्रे में है। श्रीखेमराज श्री कृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम प्रेस, बम्बई ४ द्वारा मुद्रित व प्रकाशित है।

मार्कण्डेय पुराण की श्लोक संख्याः—

मत्स्य, ब्रह्मवैवर्त, नारद व श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार मार्कण्डेय पुराण में ९००० श्लोक होना चाहिए, परन्तु उपलब्ध पुस्तक में केवल ६९०० श्लोक पाए जाते हैं २१०० श्लोक कम हैं। इसमें कुल १२९ अध्याय हैं।

अध्यापक विल्सन ने भी लिखा है कि प्रचलित मार्कण्डेय पुराण में केवल ६९०० श्लोक दीखते हैं।

२१०० श्लोक कहाँ गए, इसका समुचित उत्तर पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र, पं० कालूराम शास्त्री, पं० माधवाचार्य शास्त्री, व पं० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी व्याकरणाचार्य ने कुछ भी नहीं दिया है। सबों ने घुटने टेक दिए हैं।

श्री माधवाचार्य शास्त्री ने उपलब्ध पुराण की श्लोक संख्या ७ हजार के लगभग मानी हैं।[1]

शेष श्लोक संख्या श्री माधवाचार्य के घर में होगी।

---

[1] "द्रष्टव्य—पुराण दिग्दर्शन" पृष्ठ २८ [संवत् २००६ दि० दिल्ली]

०—०

भ्रान्ति खण्ड

(१) नरक की चर्चा—अ० १२,१३ में ।

समीक्षा—नरक कोई स्थान विशेष का नाम नहीं है [जैसा कि इस पुराण में है] दुःख विशेष का नाम नरक है ।

(२) श्राद्ध में माँस

"मासंतृप्तिः पितृणांचहविष्यान्नेनजायते ।।
मासद्वयंमत्स्यमाँसैस्तृप्तिंपितामहाः ।।२।।
त्रीन्मासान्हारिणं माँसंविज्ञेयंपितृतृप्तये ।।
पुष्णातिचतुरोमासाच्छशस्यपिशितंपितृन् ।।३।।
शाकुनंपंचवैमासान्षण्मासान्सूकरामिषम् ।
छाँगलंसप्तवैमासानैणेयंचाष्टमासिकीम् ।।४।।
करोतितृप्तिंनववैरुरोमासं नू संशयः ।
गवयस्यामिषंतृप्तिं करोतिदशमासिकीम् ।।५।। (अ० २९)

अर्थ—"हविष्यान्न से वह एक महीने तृप्त रहते हैं, मत्स्य मांस द्वारा पितामहगण दो महीने तक तृप्त रहते हैं ।। २ ।। हरिण का मांस उनको तीन महीने तृप्त रखता है, खरगोश के मांस से चार महीने उनका पोषण होता है ।। ३ ।। पक्षी के मांस द्वारा पाँच महीने, शूकर के माँस से छै महीने, वार्द्धीणस के माँस से सात महीने, ऐणमृग के माँस से आठ महीने ।। ४ ।। रुरुमृग के माँस से नौ महीने और गवय के माँस से दश महीने तक पितृगण तृप्ति लाभ करते हैं, इसमें संशय नहीं ।। ५ ।। "

समीक्षा—मृतक श्राद्ध वेद विरुद्ध है । जीवित पितरों की श्रद्धापूर्वक सेवा करना, भोजन कराना यही श्राद्ध है । माँस-भक्षण वेद विरुद्ध है । वेदों में किसी भी प्राणि का माँस खाना विहित नहीं है । इस पुराण ने गोमाँस भक्षण का भी आदेश

दिया है। ऐसे पुराण को मिट्टी का तेल डाल कर जला देना ही उचित है।

वेदों में गाय को अघ्न्या, अदिति कहा है जिसका अर्थ होता है न मारने योग्य।

राजर्षि मनुजी लिखते हैं:—

"अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रय विक्रया।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेतिघातकः ॥५१॥"

[मनुस्मृति अध्याय ५]

पं० कुल्लूकभट्ट:—**"यदनुमतिव्यतिरेकेन्हननं कर्तुं न शक्यते सोऽनुमन्ता, विशसिता अङ्गानि यः कर्तर्यादिना पृथक्-पृथक् करोति, क्रय विक्रयी मांसस्य क्रेता विक्रेता च संस्कर्ता पाचकः, उपहर्ता परिवेषकः खादको भक्षयिता। गोविन्दराजस्तु यःक्रीत्वा विक्रीणाति स क्रय विक्रयीत्येकमेदाह। तदयुक्तम्—**

हननेन तथा हन्ता धनेन क्रतिकस्तथा।
विक्रयी तु धनादानात्संस्कर्ता तत्प्रवर्तनात्।"
इति यम वचनेन पृथङ् निर्देशात्। घातकत्ववचनं चेदमशास्त्रीय पशुवधेऽनुमत्यादयोऽपि न कर्तव्या इत्वेयंपरम्, विधिनिषेध परत्वाच्छास्त्रस्य खादकादीनाँ पृथक्प्रायश्चित दर्शनात्॥

अर्थात्—अनुमति देने वाला, शस्त्र से जीव के अङ्गों को टुकड़े २ करने वाला, मारने वाला, खरीदने वाला, पकाने वाला, परोसने या लाने वाला, और खाने वाला ये सभी घातक होते हैं।

क्रय विक्रयी—श्रीगोविन्दराज ने इसका अर्थ 'खरीदकर बेचने वाला किया। यम वचन का अलग निर्देश हैं, शास्त्र

के विधि-निषेध उपपदक होते हैं तथा माँस-भक्षक के लिए अन्यत्र प्रायश्चित कहा गया है।

श्राद्ध में ब्राह्मणों को खिलाने का लोक में प्रचलन है। क्या ब्राह्मण गोमाँस भक्षण करते थे या करेंगे ? इसी अध्याय के अन्त में कहा है—"यह शास्त्र विधि का वर्णन किया" परन्तु यह शास्त्र विधि नहीं अशास्त्र विधि है, क्योंकि वेद विरुद्ध है।

(३) पुनः मांस भक्षण का विधानः—

..."शशकःकच्छपोगोधाश्वावित्खड्गोऽथपुत्रक ॥२॥"
भक्ष्याह्येतेतथावर्ज्या ग्रामशूकरकुक्कुटौ।
पितृदेवादिशेषञ्चश्राद्धे ब्राह्मणकाम्यया ॥३॥"

[मार्कण्डेय पु० अ० ३२]

अर्थ—(मदालसा अपने पुत्र को उपदेश देती है) -खरगोश, कछुआ, गोय, साहि (श्वावित्त), गौड़ा, हे पुत्र ! इन सब जीवों का मांस भक्षण कर सकता है किन्तु ग्राम्य-सूकर और ग्राम कुक्कुट (मुर्गा) अभक्ष्य है।"

समीक्षा—मदालसा का यह उपदेश भी सर्वथा वेद विरुद्ध है। और उपर्युक्त मनुस्मृति के प्रमाण से इसका भी खण्डन हो जाता है।

(४) भाई बहिन का विवाहः—

"प्रजापतिः सजग्राहतयोर्यज्ञः सदक्षिणः ॥
पुत्रोजज्ञेमहाभागदम्पतीमिथुनं ततः ॥१७॥"

[मार्कण्डेय पु० अ० ४७]

अर्थ—हाथ में समर्पण किया हे महाभाग ! उनके जो एक पुत्र और कन्या ने जन्म ग्रहण किया उनका नाम यज्ञ

और दक्षिणा हुआ। उन दोनों ने दाम्पत्य भाव धारण कि या।

समीक्षा—शतरूपा से स्वायम्भुव मनु द्वारा दो कन्याएँ आकूति और प्रसूती हुईं। प्रसूती दक्ष को और आकूति प्रजापति को व्याही गई। उनके ही एक पुत्र और कन्या ने जन्म ग्रहण किया जिनका नाम यज्ञ व दक्षिणा हुआ। दो ों ने परस्पर विवाह किया।

पुराणों में इस प्रकार के विवाह की कई घटनाएँ हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण ४।१ श्लो० ३ से ६ तक में भी यज्ञ व दक्षिणा के परस्पर विवाह की चर्चा है।

यह वेद विरुद्ध है:—

"न वा उ ते तनूँ तन्वा सं पपृच्यां
पापमाहुर्यः स्वसरंनिगच्छात्।
असंयदेतन्मनसोहृदो मे भ्राता
स्वसुः शयने वच्छयीय॥"

[अथर्व वेद काण्ड १८। सूक्त १। मन्त्र १४]

अर्थ—"हे बहिन ! (ते) तेरे (तनून्) शरीर को (तन्वा) अपने शरीर द्वारा (न वा उ सं पपृच्याम्) मैं तेरा भाई निश्चय से स्पर्श नहीं करता हूँ, क्योंकि (यः) जो भाई (स्वसारं) बहिन के साथ (निगच्छात्) भोग कर ा है उसे (पापम्) पापी (आहुः) कहते हैं। (मे) मुझे (मनसः) मन का (हृदः) और हृदय का (एतत्) यह (असंयत्) असंयम प्रतीत होता है कि (यत्) जो (भ्राता) भाई होकर (स्वसुः) बहिन की (शयने) शय्या पर (शयीय) सोऊँ" [२]

---

[२] पं० विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार कृत 'वैदिक गृहस्थाश्रम" (प्रथम सस्करण, देहरादून) पृष्ठ ३८५।

इसी प्रकार अथर्व वेद काण्ड ८, सूक्त ६, मन्त्र ७ में भाई-बहिन के विवाह का निषेध है।

आठ रुद्रों की विचित्र उत्पत्तिः—

"प्रादुरासीदथांके ऽस्यकुमारो नीललोहितः ॥
रुरोदसुस्वसो ऽथद्रवंश्चद्विज सत्तम ॥ ३ ॥
किंरोदिषीतितंब्रह्मारुदन्तंप्रत्यवाचह ॥
नामदेहीतितंसो ऽथप्रत्यु वाचजगत्पतिम् ॥ ४ ॥
ब्रह्मोवाच ॥ रुद्रस्त्वंदेवनाम्नासिरोमारो दीर्घ्यैर्य्यमावह "।

[मार्कण्डेय पु० अ० ४६]

अर्थ—हे द्विज सत्तम ! उन आठों कुमारों में जो एक कुमार नील लोहित शरीर वाला ब्रह्मा जी के शरीर से उत्पन्न हुआ था वह प्रभु की गोदी में सुस्वर से रोदन करने लगा ॥३॥ उसको रोता देख कर ब्रह्मा जी ने पूछा 'तू किस निमित्त रोता है"। कुमार ने कहा-"हे जगत्पते ! मुझको नाम प्रदान कीजिये" ॥४॥ ब्रह्मा जी बोले तुम्हारा "रुद्र" नाम हुआ। अब मत रोओ, धैर्य धारण करो।"

समीक्षा—'रुद्र' को ब्रह्माजी के शरीर से उत्पन्न होना लिखा है। शरीर के किस अंग से उत्पत्ति हुई इसका स्पष्टीकरण नहीं है। क्या ब्रह्माजी ने बिना स्त्री के ही अपने शरीर से उत्पन्न किया ? यदि किया तो यह सृष्टि क्रम के विरुद्ध है। सुस्वर रोने से "रुद्र" नाम हुआ यह भी भ्रमपूर्ण है।

"रुद्र" तो परमात्मा का नाम है जो दुष्टों को रुलाता है इसलिए उसे 'रुद्र' कहते हैं।

यजुर्वेद अध्याय १६ 'रुद्राध्याय' कहलाता है जिसमें 'रुद्र' के अनेकों अर्थ हैं।

"रुत् ज्ञानंराति ददाति इति रुद्रः ज्ञान प्रदः ॥"

(यजु० १६ । १ महीधर भाष्यम्)

रुत् अर्थात् जो ज्ञान प्रदान करता है वह रुद्र होता है। महर्षि दयानन्दजी सरस्वती ने "शिक्षा देने वाला विद्वान्" अर्थ किया है।

"रोदयन्ति शत्रून् इति रुद्राः"

(ऋग्वेद ३ । ३२ । २ सायण भाष्यम्)

शत्रुओं को रुलाने वाले को रुद्र कहते हैं।

"अग्निर्वैरुद्रः" [शतपथ ब्रा० ५।३।१।१०]

"रुद्रोऽग्निः । ।" [ताण्ड्य ब्रा० १२।४।३४]

"एष रुद्रः । यदग्निः ।"—[तैतरीय ब्रा० १।१।५।८-९]

यहां 'अग्नि' को 'रुद्र' कहा गया है।

"रोदयतीति रुद्रः"—[निरुक्त, दैवतकाण्ड १०।१।५]

"रुलानेवाले को रुद्र कहते हैं" ऐसा श्री यास्काचार्य जी कहते हैं।

अतः यह कल्पना विचित्र है।

(६) स्वरोचिका पत्नियों सहित छःसौ वर्ष पर्यन्त विहार करनाः—

"समेत्यताभिर्भूयश्चवर्द्धमानमनोभवः।
आक्षिप्त निर्वेदकथोरेमेवर्ष शतानिषट् ॥ ३ ॥"

[मार्कण्डेय पु० अ० ६३]

अर्थ—"किन्तु पत्नियों के सहित मिलित होते ही फिर कामप्रवृत्ति बलवती होने से उनका वैराग्य नष्ट हो गया और इसके पीछे भी उनके संग छःसौ वर्ष पर्यन्त विहार किया।"

समीक्षा—मनुष्य का छःसौ वर्ष तक स्त्री के साथ विहार करते हुए जीवित रहना असम्भव है। विषयभोग से आयु क्षीण ही होती है। अतः यह भ्रान्ति मात्र है।

(७) मृगी से मनुष्य की उत्पत्ति

मार्कण्डेय उवाच। एवमुक्तस्ततः सोऽपिराजा प्राप्य परांमुदम् ॥ पुत्रोममारीञ्जित्वेति पृथिव्यां भविता मनुः ॥४४॥ ततस्तंसुषुवेपुत्रं सामृगीलक्षणान्वितम्। तस्मिञ्जातेचभूतानिसर्वाणिप्रययुर्मुदम् ॥ ४५ ॥ "

[मार्कण्डेय पु० अ० ७१]

अर्थ—मार्कण्डेयजी बोले–"तदनन्तर यह पुत्र मेरे शत्रुओं को जीत कर पृथ्वी में मनु होगा।" इस प्रकार वचन सुन कर वह राजा परमहर्ष को प्राप्त हुए ॥ ४४॥ "इसके उपरान्त उस मृगी ने सुलक्षणयुक्त पुत्र प्रसव किया। बालक के जन्म ग्रहण करने पर सम्पूर्ण प्राणी आनन्दित हुए थे ॥ ४५ ॥ "

समीक्षा—मृगी से बालक का जन्म होना सृष्टि क्रम के विरुद्ध है। मृगी के गर्भ में बालक का रहना असंभव है।

पशु-पक्षी से संभोग करना यजुर्वेद अ० १९ मंत्र ७६ के विरुद्ध होने से पुराण की घटना भ्रमपूर्ण है।

मधु व कैटभ नामक असुरों की कान के मल से उत्पत्तिः—

"तदाद्वावसुरौघोरौविख्यातौमधुकैटभौ ॥
विष्ण कर्णमलोद्भूतौहंतुं ब्रह्माणमुद्यतौ ॥ ५० ॥

[मार्कण्डेय पु० अ० ७८]

अर्थ—"उसी समय दो अत्यन्त भयंकर असुर कि, जिनका नाम मधु और कैटभ विख्यात था विष्णु के कान के मल से उत्पन्न होकर ब्रह्माजी का संहार करने के लिए उद्यत हुए ॥ ५० ॥

समीक्षा—विष्णुजी योग निद्रा में थे और उनके कान के मल से मधु व कैटभ नामक राक्षस उत्पन्न हो गए और उन्हें ज्ञात भी नहीं हुआ। जिस जाति का ईश्वर सोया रहे और कोई घटना हो जाने पर भी उसे ज्ञात न हो उस जाति का रक्षक कौन हो सकता है? कान के मल से उत्पत्ति सृष्टिक्रम के विरुद्ध होने से गप्प मात्र है।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों ही परमात्मा के नाम हैं तब मधु व कैटभ का ब्रह्मा जी को नाश करने की कल्पना ही मिथ्या है।

(९) वैश्य और राजा द्वारा देवी की मूर्ति पूजना

तौतस्मिन् पुलिनेदेव्याः कृत्वामूर्तिमहीमयीम् ॥ अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नि तर्पणैः ॥ ७ ॥ निराहारौयतात्मानौतन्मनस्कौसमाहितौ ॥ ददतुस्तौबलिं-चैव निजगात्रा सृगुक्षितम् ॥ ८ ॥ एवं समाराधयतेस्त्रिभिर्व-र्षैर्यतात्मनोः ॥ परितुष्टाजगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राहचण्डिका ॥ ९ ॥ श्री देव्युवाच ॥ यत्प्रार्थ्यतेत्वयाभूपत्वयाचकुलन्दन ॥ मत्तस्त-त्प्राप्यतांसर्वेपरितुष्टाददामितत् ॥ १० ॥

[मार्कण्डेय पु० अ० ९०]

अर्थ—"वैश्य और राजा ने उस पुलिन में देवी की मिट्टी के द्वारा मूर्ति बनाय, पुष्प, धूप, होम और तर्पण इत्यादि से उसकी पूजा करी ॥ ७ ॥ उन्होंने कभी निराहार और नियमिताहार पूर्वक उसमें चित्त लगाय तथा सावधान हो अपने

अपने देह से रक्त टपका कर बलि दी ॥ ८ ॥ इस प्रकार संयत चित हो तीन वर्ष आराधना करने पर जगद्धात्री चण्डिका ने सन्तुष्ट होकर उनसे प्रत्यक्ष कहा ॥ ९ ॥ देवी बोली—हे राजन् ! तुम जो प्रार्थना करते हो, और हे कुलनन्दन वैश्य ! तुम भी जो प्रार्थना करते हो, तुम मेरे निकट से उन सबको प्राप्त होंगे, मैं सन्तुष्ट होकर वह प्रदान करती हूँ ॥ १० ॥

समीक्षा—वैश्य व राजा द्वारा पुलिस में देवी की मिट्टी की मूर्ति बना कर पूजन करना व देवी का प्रसन्न करना दोनों ही गप्प हैं।

मूर्तिपूजा का खण्डन पुराणों में है:—

"योमांसर्वेषुभूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।
हित्वार्चाभजतेमौढ्याद् भस्मन्ये व जुहोतिसः ॥"

[भागवत स्क० ३ अ० २९ श्लोक २१]

अर्थ—"जो भी मुझ सब भूतों में विद्यमान होते हुए परमात्मा का त्याग करके मूर्तिपूजा में लगता है वह मानों राख में आहुति डालता है।"

यदि दोनों पुराणों के लेखक वेदव्यास जी हैं तो परस्पर विरोध क्यों है ?

किसी शाक्त ने देवीजी की मिट्टी की मूर्ति बना कर पूजा करने के लिए यह श्लोक प्रक्षेप कर दिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं है।

वेदों में मूर्तिपूजा का निषेध है:—

"न तस्य प्रतिमा अस्ति"— (यजु० ३२। ३)

अर्थ—"जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा, परिमाण, सादृश्य वा मूर्ति नहीं है।"

अतः वेदविरुद्ध होने से यह प्रमाण भ्रमपूर्ण है।

(१०) "दमपुत्र महीपति राज्य वर्द्धन का सात सहस्र वर्ष तक प्रजापालन करना:

"नोपसर्गोनचव्याधिर्नचव्यालोद्भवंभयम् ॥
नचावृष्टि भयन्तत्र दमपुत्रेमहीपतौ ॥ ७ ॥
सईजेच महायज्ञैर्ददौदानानिचार्थिनाम् ॥
सुधर्मस्याविरोधेन बुभुजेविषयानपि ॥ ८ ॥
तस्यैव कुर्वतोराज्यंसम्यक्पालयतः प्रजाः ॥
सप्तवर्ष सहस्राणिजग्मुरेकमहर्यथा ॥ ९ ॥
विदूरथस्यतनयादाक्षिणात्यस्यभूभृतः ॥
तस्यपत्नी बभूवाथमानिनीनाममानिनी ॥ १० ॥"

[मार्कण्डेय पु० अ० १०६]

अथ —' दमपुत्र महीपति राज्यवर्द्धन के शासनकाल में कोई उपसर्ग, व्याधि, सर्पादि हिंसक जन्तु का भय वा अवृष्टि का भय नहीं था। वह महामहायज्ञ कार्य में अर्थीगणों को दान करके अति धर्म के सहित विषयों को भोगते थे ॥ ८ ॥ इस प्रकार राज्यकार्य और सम्यक् प्रकार प्रजापालन करके उन्होंने एक दिन के समान सातहजार वर्ष बिताए थे ॥ ९ ॥ विदूरथ नामक दक्षिण देश के अधिपति की मानिनी नाम कन्या उनकी पत्नी थी ॥ १० ॥

समीक्षा—किसी भी मानव का सात सहस्र वर्षों तक जीवित रहना असंभव है। यह वेद विरुद्ध होने से गप्प है। इसी प्रकार 'मार्कण्डेय पुराण' अध्याय १०७ श्लोक ४ में राज्य-वर्द्धन का दश सहस्र वर्ष तक जीवित रहना भी निरी गप्प है।

अध्याय ११० श्लोक १ में भी महावीर कारुष क्षत्रिय-गण करुष के पुत्र हैं । वे संख्या में सात सौ हैं । एक पुरुष के सात सौ पुत्र होना गप्प है ।

(११) महा असुर रक्तबीज और देवी का युद्धः

मार्कण्डेय पुराण अ० ८५ श्लोक ३८ से ५७ तक में रक्त-बीज के युद्ध का वर्णन है ।

"मातृगणों के द्वारा पीड़ित होकर दैत्यगण भागते हैं, यह देखकर रक्तबीज नामक महाअसुर क्रोध पूर्वक युद्ध करने के लिए आया । इस रक्तबीज महाअसुर के शरीर से एक बूँद रक्त जब भूमि में गिरता तब उसी समय भूमि से उसके अनुरूप एक असुर उत्पन्न हो जाता । वही महाअसुर रक्तबीज गदा हाथ में ले इन्द्र की शक्ति के संग युद्ध करने लगा तब ऐन्द्री ने अपने वज्र ये रक्तबीज को ताड़ित किया । फिर वज्र पीड़ित रक्तबीज के शरीर से जैसे ही रुधिर से उसी के अनुरूप और समान पराक्रमशाली अनेक योद्धा उत्पन्न हो गए । रुधिर टपका वैसे ही टपके हुए उसके शरीर से रक्त की जितनी बूदें गिरीं उतने ही पुरुष उत्पन्न हुए । वह पुरुष बल, वीर्य और पराक्रम में रक्तबीज के ही समान थे । वह रक्त की बूदों से उत्पन्न हुए पुरुष भी मातृगणों के संग उस रणक्षेत्र में अत्यन्त उग्र शस्त्र चलाकर अति भयंकर युद्ध करने लगे । पुनर्वार जब ऐन्द्री ने वज्रपात से इस असुर का मस्तक काटा, तब उस क्षतस्थान से रक्तप्रवाह बहने लगा, और उससे हजार हजार असुर उत्पन्न हुए । वैष्णवी शक्ति ने युद्ध स्थल में उसको चक्र से काटा और ऐन्द्री ने गदा से इस असुरेश्वर को डाउन किया । वैष्णवी के चक्र से कटे हुए असुर के रुधिर बहने से उत्पन्न हुए उसी के सदृश हजारों बड़े-बड़े असुरों से जगत् व्याप्त हो गया ।"

पौराणिक पण्डितों की लीला—पं० कालूराम शास्त्री [३] व पं० दीनानाथ शास्त्री [४] ने इसे क्रमशः 'अयुक्ति अलङ्कार' और 'अतिशयोक्ति' कहा है।

श्री दीनानाथ शास्त्री ने एक विचित्र बात लिखी है कि 'रक्तबीज' यह नाम ही सिद्ध कर रहा है कि उसके रक्त में बीज (वीर्य) रहा करता था। [५]"

'अतिशयोक्ति अलङ्कार की कल्पना पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र [६] ने भी की है।

समीक्षा—यह महागप्प है। पौराणिकों का 'अतिशयोक्ति' कहना भी पिण्ड छुड़ाना है। इस तरह से पुराणों की सारी कथाएँ ही 'अतिशयोक्ति' हो जायेंगी।

क्या 'रक्तवीज' के ही शरीर में वीर्य था और किसी मनुष्य के शरीर में पानी रहता है? यह तर्क भी विचित्र है। सभी मनुष्यों के शरीर में वीर्य रहता है तो युद्ध में मरने पर उसके रक्त से अन्य प्राणी क्यों नहीं उत्पन्न होते? अतः शास्त्री जी की कपोल कल्पना भ्रान्ति पूर्ण है।

श्री कालूराम ने, श्री ज्वालाप्रसाद मिश्र के लेख की प्रतिलिपि की है और इन दोनों की प्रतिलिपि श्री दीनानाथ शास्त्री ने की है।

३:—"आर्यसमाज की अन्त्येष्टि" प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ४१४

४—"श्री सनातनधर्मालोक (१०) प्रथम संस्करण, पृष्ठ ८२३

५—वही, पृष्ठ, ८१७

६—"दयानन्द तिमिर भास्कर 'प्रथमावृत्ति' पृष्ठ ४७१

अतः महर्षि दयानन्द जी सरस्वनी ने जो इसकी आलोचना की है वह नितान्त उचित है।

वे लिखते हैं:—"जैसे मार्कण्डेय पुराण के दुर्गापाठ में देवों के शरीरों से तेज निकल के एक देवी बनी। उसने महिषासुर को मारा। रक्तबीज के शरीर से एक बिन्दु भूमि में पड़ने से उसके सदृश रक्तबीज के उत्पन्न होने से सब जगत् में रक्तबीज भर जाना, रुधिर की नदी का बह चलना आदि गपोड़े बहुत से लिख रक्खे हैं। जब रक्तबीज से सब जगत् भर गया था तो देवी और देवी का सिंह और उसको सेना कहाँ रही थी? जो कहो कि देवी से दूर २ रक्तबीज थे तो सब जगत् रक्तबीज से नहीं भरा था? जो भर जाता तो पशु, पक्षी, मनुष्यादि प्राणी और जलस्थ मगर, मच्छ, कच्छप, मत्स्यादि, वनस्पति आदि वृक्ष कहाँ रहते? यहाँ यही निश्चय जानना कि दुर्गापाठ बनाने वाले पोप के घर में भाग कर चले गए होंगे !!! देखिये क्या ही असंभव कथा का गपोड़ा भङ्ग की लहरी में उड़ाया जिनका ठौर न ठिकाना।" [७]

शान पर चढ़ा कर विश्वकर्मा द्वारा सूर्य का तेज कम करना:—

सातवें वैवस्वत मनु की कथा अध्याय ७४, ७५ में कही गई है। त्वष्टा की पुत्री संज्ञा का विवाह सूर्य से हुआ। उससे दो पुत्र हुए। एक वैवस्वत मनु और दूसरे यम। एक कन्या यमुना का जन्म भी संज्ञा से हुआ। सूर्य का तेज अत्यधिक था। उसे न सह सकने के कारण संज्ञा दुःखी रहती थी।

---

७ सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लास।

उसने अपने पिता प्रजापति त्वष्टा के घर जाने का निश्चय किया और अपने स्थान में अपना छायामय शरीर रख कर उसने कहा कि तुम बच्चों के साथ और सूर्य के साथ मेरे समान ही व्यवहार करना और पूछने पर भी मेरे जाने की बात न कहना। छाया ने ऐसा ही आश्वासन दिया।

संज्ञा अपने पिता के घर जब कुछ दिन रह चुकी तो त्वष्टा ने कहा—"तुम्हारे धर्म का लोप हो रहा है। बन्धु-बान्धवों के यहाँ स्त्रियों का अधिक दिन रहना ठीक नहीं। तुम मेरे)लिए पूज्य हो और मैं तुम से प्रसन्न भी हूँ, पर तुम्हारा पतिगृह में जाना। ही उचित है। संज्ञा पिता की बात मानकर वहाँ से चल दी पर सूर्य के यहाँ न जाकर वह उत्तर कुरुदेश में चली गई और घोड़ी का रूप धारण करके तप करने लगी।

इधर सूर्य ने छाया में दो पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न की। छाया का व्यवहार मनु और यम यमी के साथ अच्छा न था। इस पर सूर्य ने उसका कारण पूछा और बात खुल गई। तब सूर्य त्वष्टा के यहां गए और संज्ञा के सम्बन्ध में प्रश्न किया। त्वष्टा ने कहा—हाँ, वह आई अवश्य थी पर मैंने तो उसे आपके ही यहाँ भेज दिया। इस पर सूर्य ने ध्यान धर कर देखा और संज्ञा को उत्तर कुरुदेश में घोड़ी के रूप में तप करते पाया। संज्ञा की इच्छा थी कि मेरे पति किसी प्रकार सौम्य रूप को प्राप्त हो जायें। इस लक्ष्य को जान कर सूर्य ने प्रजापति त्वष्टा से कहा—'आप मेरे तेज को कम कर दीजिए'। विश्वकर्मा ने संवत्सर रूपी खराद पर चढ़ा कर सूर्य के अधिक तेज को छाँट दिया जिससे सूर्य का रूप अत्यन्त सुन्दर और दर्शनीय बन गया। यह देख कर देवता और देवर्षि सूर्य की स्तुति करने लगे"—

"हे देव ! तुम ऋक् स्वरूप हो, तुमको नमस्ते है। तुम साम स्वरूप हो तुमको नमस्ते है। तुम्हीं यजुः स्वरूप और साम के द्युतिमान हो तुमको नमस्कार है। तुम्हीं ज्ञान के एकमात्र आधार स्वरूप हो, तमोनाशक हो, शुद्धि ज्योतिः स्वरूप विशुद्ध और निर्मलात्मा हो, तुमको नमस्कार है। तुम शङ्ख, चक्र, शार्ङ्ग और पद्म धारण करने वाले हो तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं वरिष्ठ वरेण्य, पर और परमात्मा तुम्हीं सम्पूर्ण जगद्वन्द्य पिस्वरूप और आत्ममूर्ति हो तुम्हें नमस्कार है। अपनी इच्छा से रूप और तेज क्षय करो।"

(अध्याय ७५ श्लोक १ से १४ तक)

अनन्तर सूर्य ने अपने तेज का षोडश भाग मात्र धारण किया। विश्वकर्मा ने उसको भी फिर पन्द्रह बार छीला। इसके पीछे सूर्य ने अश्वरूप धारण कर, उत्तर कुरु वर्ष में जाय वड़वा रूप धारिणी संज्ञा को देखा। उसी स्थान में दोनों की नासिका मिलने पर घोड़ी के मुख से नासत्य और दस्र नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। और उस वीर्य के शेष भाग से चर्म (ढाल) कवच व खड्गधारी वाणतूणमुक्त अश्वारूढ़ रेवन्त नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके बाद सूर्य ने उस अश्विनी को अपना अतुल रूप दिखाया। तब बड़वारूप धारिणी संज्ञा ने, उनका यथार्थ स्वरूप देख, प्रसन्न हो अपना स्वरूप धारण किया तब भास्कर अपनी भार्या को घर लाये। इसका ज्येष्ठ पुत्र ही वैवस्वत नामक मनु हुआ, दूसरे पुत्र यम शाप के कारण धर्म दृष्टि हुए।"

समीक्षा—संज्ञा का घोड़ी रूप धारण करना, विश्वकर्मा द्वारा सूर्य को शान पर चढ़ा कर छीलना पुनः संज्ञा के नथुने से दो पुत्रों का उत्पन्न होना सब गप्प है।

जब संज्ञा में घोड़ी का रूप धारण करने की शक्ति थी तब क्या वह सूर्य के तेज को सहन नहीं कर सकती थी ? आकाश में स्थिर सूर्य से विवाह होना भी असंभव ही है। विश्वकर्मा का सूर्य पर चढ़ना भी गप्प ही है। क्या सूर्य भी कभी शान पर चढ़ाया जा सकता है ? जब शान पर चढ़ा कर छीला जा रहा था तब सर्वत्र अन्धकार ही हो गया होगा ? वह शान कितना बड़ा था ? क्या वह पोप जी के घर में रखा हुआ था ?

घोड़ी रूपी संज्ञा के नथुने से दो पुत्रों का उत्पन्न होना भी सृष्टिक्रम के विरुद्ध है। क्या वीर्य नाक में डाला जाता है ? क्या शेष वीर्य से ढाल, कवच, बाण, तलवार धारण किए तथा अश्व पर चढ़े हुए पुत्र का उत्पन्न होना सृष्टि क्रम के अनुकूल है ? पशु के गर्भ से मनुष्य की उत्पत्ति का होना असंभव है।

(१३) पार्वती के शरीर से कौशिकी का उत्पन्न होना—

देवता लोग देवी की स्तुति कर रहे थे उसी समय पार्वती जी गङ्गा जल में स्नान करने के लिए जाने को उनके सामने आ गई। वह देवताओं से बोली—

"साऽब्रवीत्तान्सुरान्सुभ्रूर्भवद्भि स्तूयतेत्रका ॥
शरीर कोश तक्षास्याः समुद्भूताब्रवीविच्छवा ॥४१॥
स्तोत्रं ममैतत्क्रियतेशुंभदैत्यनिराकृतैः ॥ देवैः समस्तैः
समरे निशुंभेनपराजितैः ॥४२॥ शरीर कोशाद्यत्तस्याः
पार्वत्यानिः सृतांबिका ॥ कौशिकीति समस्तेषुततोलो

केवुगीयते ॥४३॥ [मार्कण्डेय पु० अध्याय ८२]

अर्थ--"वह सुन्दर भ्रुकुटि सं शोभित पार्वती देवताओं से बोली, "तुम लोग किसकी स्तुति करते हो ? उसी समय में उन पार्वती के शरीर कोश से शिवा देवी ने उत्पन्न होकर कहा ॥४१॥

"समर में निशुंभ के द्वारा हारे हुए और शुंभ के द्वारा निकाले हुए देवता एकत्र मिलित होकर मेरी ही स्तुति करते हैं ॥४२॥

अम्बिका उन पार्वती के शरीर कोश से उत्पन्न हुई, इस कारण समस्त भुवन में वह "कौशिकी" नाम से कही गई है ॥४३॥

समीक्षा—पार्वती के शरीर कोश से शिवा देवी अम्बिका का उत्पन्न होना गप्प है। सृष्टि क्रम के विरुद्ध है। इस प्रकार उत्पत्ति नहीं होती है। बिना रज-वीर्य के ही अचानक कैसे उत्पन्न हुई ? इसे कोई भी वैज्ञानिक व विद्वान् नहीं मानेगा ?

(१४) बौद्ध संन्यासी के दर्शन से मृत्यु निकटः—

"नग्नंक्षपणकस्वप्नेहसमानं महाबलम् ॥
एवं संवीक्ष्यवल्गन्तंविद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥"

[भार्कण्डेय पु० अ० ४० श्लोक १७]

अर्थ—"स्वप्न में महाबल नग्न क्षपणक बौद्ध संन्यास को अकेला हँसते २ जाता देखने से जाने कि उसका मृत्युकाल बहुत निकट है।"

समीक्षा—स्वप्न की बात कोई सत्य नहीं मानता है। बहुतसे व्यक्तियों को स्वप्न में रुपया मिलता है तो क्या वह धनी हो जाता है ?

क्षपणक बौद्ध संन्यासी की चर्चा होने से ज्ञात होता है कि 'मार्कण्डेय पुराण' बौद्धकाल के बाद लिखा गया है।

मार्कण्डेय पुराण का रचना-काल

पौराणिक यह मानते हैं कि सभी पुराण सृष्टि उत्पत्ति के समय बने परन्तु यह बात भ्रमपूर्ण है।

'मार्कण्डेय पुराण' के लेखक वेदव्यास नहीं थे यह गुप्तकाल में बना है। कई विद्वान् इस बात को स्वीकार करते हैं।

पं० बलदेव उपाध्याय साहित्याचार्य, एम० ए० का मत है—

"यह पुराण प्राचीन पुराणों में अन्यतम माना जाता है और विषय प्रतिपादन की दृष्टि से पर्याप्त रूप से नवीन तथ्यों का विवरण प्रस्तुत करता है। इसे गुप्त काल की रचना मानने में किसी प्रकार की विप्रपत्ति नहीं है। जोधपुर से उपलब्ध दधिमति माता के शिलालेख में 'सर्वमंगलमाङ्गल्ये' (सप्तशती का प्रख्यात श्लोक) श्लोक उद्धृत है। इसका समय २८९ दिया गया है, जिसे भण्डारकर गुप्त संवत् मानते हैं। (६०८ ई०) परन्तु मिराशी इसे तद्भिन्न भाटिक संवत् का निर्देश मान कर इसका समय ८१३ ई० मानते हैं।[८] जो कुछ भी हो, यह

८. द्रष्टव्य--मिराशी का लेख "A lower limit for the date of the Devi Mahatmya" ["पुराणम्" षण्मासिक पत्रिका, वाराणसी, जि० १ संख्या ४, पृष्ठ १८१—१८६]

पुराण ६०० ई० से प्राचीनतर है और ४००-५०० के बीच माना जाना चाहिए।" [९]

उपाध्याय जी पौराणिक विद्वान् होते हुए भी इस पुराण को ४००-५०० ई० के बीच का मानते हैं।

इसीलिए कहा जाता है कि व्यास जी का सम्बन्ध इस पुराण से सर्वथा नहीं है क्योंकि वक्ता द्रोण तनय पक्षी है। इसी कारण मार्कण्डेय से कहा गया, मार्कण्डेय पुराण में तथ्य नहीं है।

पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र विद्यावारिधि का मत है कि "शङ्कराचार्य, बाण और मयूरभट्ट द्वारा इस मार्कण्डेय पुराण का उल्लेख होने से इसको बहुत प्राचीन ग्रन्थ ही स्वीकार कर सकते हैं। बड़े ही आश्चर्य का विषय है, लोगों ने सप्तशती चण्डी का आदर किया है। नेपाल से एक बौद्धाचार्य की हस्त लिखित ८०९ वर्ष की सप्तशती पाई गई है। संम्भवतः बौद्ध प्रभावकाल में भी यह पुराण भ्रष्ट नहीं हुआ। इसको हम बहुत प्राचीन पुराण कह कर ग्रहण कर सकते हैं।[१०]

उपाध्याय जी ने ४००-५०० ई० के मध्य माना है जबकि मिश्र जी केवल प्राचीन कहते हैं।

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल (अध्यापक काशी बिश्व विद्यालय) का मत है—"अतएवं यह परिणाम समीचीन ज्ञात होता है जैसा श्री पार्जिटर ने भी माना है कि इस पुराण

---

९ "पुराण-विमर्श" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ५५१

१० "अष्टादश पुराण दर्पण" पृष्ठ २०७

का वर्तमान स्वरूप विक्रम की पाँचवीं शती में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय तक सम्पन्न हो चुका था।" [११]

पुनः—"स्वरोचिष् की कथा के प्रसंग में गुप्त युग के भोग प्रधान समृद्ध जीवन की एक झाँकी दी गई है। कहा है कि यह सारा जगत् भोगात्मक है। भोग भोगने के लिए आयु का कोई भाग अनुपयुक्त नहीं है। मनुष्यों की चेष्टा या कर्मों का फल जीवन में भोग भोगना है:—

अकालः कोपि भोगानाम् सर्वं भोगात्मकम् जगत्।
यज्ञाः क्रियन्ते भोगार्थम् ब्राह्मणैः संयतात्मभिः॥
दृष्टादृष्टांस्तथा भोगान् वाञ्छमाना विवेकिनः।
दानानि च प्रयच्छन्ति पूर्णं धर्मांशञ्च कुर्वते॥

इन भोगों को प्राप्त करने के लिए पुष्कल धन की आवश्यकता होती है। यथेष्ट धन संचय का साधन पद्मिनी विद्या है। अध्याय ६८ में उस पद्मिनी विद्या का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस अध्याय को सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर पता लगता है कि गुप्तों के स्वर्ण युग में धन कमाने के जो मुख्य पेशे थे उन्हीं का नाम 'पद्मिनी विद्या' थी। [१२] इससे भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह गुप्त युग की कृति है। पुनः—

"यह परिणाम समीचीन ज्ञात होता है जैसा श्री पार्जिटर ने भी माना है, कि इस पुराण का वर्तमान स्वरूप विक्रम की

---

११. "मार्कण्डेय पुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन" पृष्ठ १९ [सन् १९६१ ई० में हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण]

१२- वही, पृष्ठ १५७।

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
पु परिग्रहण कमांक .. २४४५
दयानन्द महिला महाविद्यालय, पुरानी

पाँचवीं शती में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय तक सम्पन्न हो चुका था।"*

पुनः

"गुप्त युग में नारायणीय-धर्म का जो स्वरूप निष्पन्न हो रहा था उसमें कई स्रोतों से आई हुई धाराओं के जल एक में मिलकर अतिशय वेगवाली महाधारा का निर्माण हुआ। इन सबका सम्मिलित नाम भागवत धर्म प्रसिद्ध हुआ। किन्तु यदि उस महान् आन्दोलन के बटे हुए तारों को अलग अलग करके देखा जाय तो भारतीय धार्मिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय सामने आ जाता है। बाण ने हर्षचरित में दिवाकर मित्र के आश्रम का वर्णन करते हुए भागवत, पांचरात्र और वैखानस इनका अलग अलग उल्लेख किया है। तूषम से प्राप्त गुप्तकालीन एक लेख में सात्वत सम्प्रदाय का उल्लेख आया है।[१३] शान्ति पर्व से ज्ञात होता है कि प्राचीन वेद और उपनिषदों की जो धारा थी वह नर नारायण के प्रतीक में अभिव्यक्त हुई। जिसे पांचरात्रिक नाम से अलग कहा है वह बासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध की प्राचीन मान्यता पर आश्रित थी। पाणिनी ने वासुदेव और अर्जुन की भक्ति पूजा का जो उल्लेख अपने एक सूत्र में किया है (वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्, ४।३।९८) वह मान्यता प्राचीन नर-नारायण सम्प्रदाय के साथ ही मिल गई और वासुदेव नारायण का एवं अर्जुन नरका

* वही, पृष्ठ १६

१३—देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर, क्या गुप्त युग में कोई वैष्णव सम्प्रदाय विद्यमान था। (वाज देयर एनी वैष्णव सैक्ट् इन एक्जिसटेन्स इन दी गुप्त पीरियड), इण्डियन कल्चर, वरुआ वैल्यूम, पृष्ठ ४-५।

अवतार माने जाने लगे। नर-नार-नारायण के प्राचीन सूत्र में जिसका मनुस्मृति में उल्लेख हुआ है, नर स्वयंभू का वाचक था और नारायण का भी पूर्वरूप होने से उसका महत्व अधिक था। किन्तु अर्जुन के साथ नर का भाव जब मिल गया तो नर नारायण के आपेक्षिक महत्व में परिवर्तन हुआ। वैसे उद्योग पर्व में एक सत्व या मूल तत्व को नारायण और नर के रूप में द्विधा विभक्त कहा है—

नारायणो नरश्चैव सत्वमेकं द्विधा कृतम्।

(उद्योग०, ४८।२०)

नर-नारायण के वर्णन के प्रसंग में, अथवा चतुर्व्यूहात्मक पाँचरात्रिक धर्म के अन्तर्गत, पुराणों में एक वर्णन और जुड़ा हुआ प्रायः मिलता है। वह है विष्णु का वराह और नृसिंह के रूप में अवतार लेना।"[१४]

श्री वासुदेव उपाध्याय एम० ए० लिखते हैं—

"....पुराणों का अन्तिम संस्करण गुप्तकाल में हुआ×।[१५]

इन प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मार्कण्डेय पुराण की रचना गुप्तकाल में हुई है।

जैमिनी का दूसरा प्रश्न—
द्रौपदी के पांच पति का रहस्य

जैमिनी का दूसरा संशय यह था कि अकेली द्रौपदी पाँच

१४—'मार्कण्डेय पुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन' पृष्ठ ४३

×श्री राखालदास बनर्जी —'इम्पीरियल गुप्त' पृष्ठ ११२

१५—'गुप्त साम्राज्य का इतिहास' द्वितीय खण्ड, प्रथम संस्करण पृष्ठ १३०।

पांडवों की पत्नी कैसे हुई ?[१६] इसके उत्तर में धर्मपक्षियों ने एक उपाख्यान सुनाया जो महाभारत आदि पर्व के पंचेन्द्र उपाख्यान से मिलता है। यहाँ कहा है कि त्वष्टा के पुत्र त्रिशिरा विश्वरूप का जब इन्द्र ने वध कर डाला तो इन्द्र को ब्रह्म-हत्या लगी और इन्द्र के तेज की हानि हो गई, तथा वह ऐन्द्र तेज धर्म में प्रविष्ट हो गया। त्वष्टा भी चुप नहीं बैठे, उन्होंने अपनी जटा का एक बाल नोंचकर उससे वृत नाम का नया असुर उत्पन्न किया। अग्नि में आहुति देते हुए उन्होंने इच्छा की कि वह पुत्र इन्द्रशत्रु अर्थात् इन्द्र का मारने वाला हो, पर उच्चारण में स्वर के दोष से उनकी यह इच्छा पूरी न हो सकी, और इन्द्र जिसका शत्रु हो ऐसा परिणाम अन्त में हो गया। फिर भी उस असुर को प्रबल देखकर इन्द्र ने सप्तर्षियों को उसके पास संधि के लिए भेजा। वृत्र ने बात मान ली, पर जो शर्त नामा तय हुआ, इन्द्र ने उसे तोड़कर (समर्यास्थितिमुल्लंघ्य, ५।१०) उसे मार डाला। इससे इन्द्र का बल फिर घट गया और वह वायु के पास चला गया। इसीलिये सर्वव्यापी वायु बल का अधिदेवता है। फिर जब इन्द्रने गौतम का रूप रखकर अहिल्या का धर्षण किया तब इन्द्र का रूपलावण्य भी उसे छोड़ कर अश्विनीकुमारों के पास चला गया। इन्द्र को तेज, बल और रूप से हीन देखकर उसे जीतने की इच्छा से असुर घर-घर में उत्पन्न हो गये। तब पृथिवी ने पाप के भार से पीड़ित हो मेरु पर्वत पर देवों के पास गुहार की और कहा— 'आप लोगों ने जिन बली असुरों का बध किया, वे सब मानव रूप में राजकुलों में उत्पन्न हो गये हैं। उनकी शान्ति का उपाय कीजिये (५।१८—१९)।

१६—मार्कण्डेय पुराण, अ० ४ श्लोक ३२।

यह उपाख्यान उस युग का है जब पाण्डवों को धर्म और कौरवों को अधर्म या आसुरी शक्ति का प्रतीक मान लिया गया था। गुप्त युग में जो दुष्ट विक्रांत राजा थे जिनका विवेचन गुप्त सम्राटों के शिलालेखों में आता है उन्हें ही यहाँ पर असुरों का प्रतीक कहा है। देव और असुर ज्योति और तम, अमृत और मृत्यु, सत्य और अनृत के वैदिक प्रतीक थे। उन्हें ही नये युग में धर्म और अधर्म का प्रतीक कहा गया। मार्कण्डेय पुराण में आसुरी स्वभाव या राक्षसपन की यह नवीन व्याख्या एक राक्षस के मुख से ही स्पष्ट कहलाई गई है--

नर-भक्षण करने के कारण हम राक्षस नहीं, हम मानव के सुकृत्य और पुण्य को खा लेते हैं, यही हमारा राक्षसपना है। पुरुषों और स्त्रियों का जो स्वभाव या चरित्र है, उसको लुप्त कर देना ही हमारा राक्षसपन है। जो हमारा अपमान करता है उसके अच्छे स्वभाव को और जो सम्मान करता है उसके बुरे स्वभाव को हम खा लेते हैं। हम जन्तु की देह का भक्षण नहीं करते। हम जिसके क्षमा गुण को हर लेते है, वह क्रोध से स्वयं असुर बन जाता है और जिसके दुष्ट गुणों को खा लेते हैं वही गुणवान् बन जाता है।[१७]

पृथिवी का वचन सुनकर देवों ने प्रजाओं के उपकार व

१७—न वयं मानुषाहारा अन्ये ते नृप राक्षसाः।
सुकृतस्य फलं यत्तु तदश्नीमो वयं नृप ! ॥
स्वभावंच मनुष्याणाँ योषितांच विमानिताः।
मानिताश्च समश्नीमो न वयं जन्तु खादकाः ॥
यद्यस्माभिर्नृणां क्षान्तिर्भुक्ता क्रुध्यन्ति ते नराः।
भुक्ते दुष्टे स्वभावे च गुणवन्तो भवन्ति च ॥
—(मार्कण्डेय पु० अ० ६७ श्लोक १६ से १८ तक)

भूमि के भारहरण के लिए पृथिवी पर अवतार लिया। इंद्र का जो तेज धर्म में मिल गया था वह युधिष्ठिर के रूप में कुन्ती में उत्पन्न हुआ, जो बल वायु में गया था उससे भीम का जन्म हुआ, एवं इन्द्र का जो रूप अश्विनीकुमारों के पास चला गया था उससे माद्री में नकुल, सहदेव का जन्म हुआ। इस प्रकार एक ही भगवान् इन्द्र ने पाँच इन्द्रों के रूप में जन्म लिया। इंद्र की ही पत्नी इन्द्राणी यज्ञीय अग्नि से महाभागा द्रौपदी के रूप में उत्पन्न हुई।

द्रौपदी के पाँच पतियों के प्रश्न को लेकर महाभारत में भी विशेष उधेड़बुन की गई है। वहाँ राजा द्रुपद अपनी पुत्री के विषय में चिन्तित हैं कि वह किसकी पत्नी बनेगी ?

युधिष्ठिर ने कहा—'यद्यपि अर्जुन ने इसे जीता पर यह रत्न है और हमारा नियम है कि सब लोग रत्न का भोग करें द्रुपद ने फिर अपनी अधीरता प्रकट की - 'एक पुरुष की बहुत सी स्त्रियाँ तो विहित हैं, पर एक पत्नी के लिए बहुत से पुरुषों का विधान कभी नहीं सुना। तुम अल्पमति होकर लोक और धर्म विरुद्ध क्यों करते हो।' उत्तर में युधिष्ठिर ने यही कहा—'हे महाराज! धर्म सूक्ष्म है, हमें इसकी ठीक पहचान नहीं। पहले लोगों ने जो मार्ग पकड़ा था, उसी पर हम भी चलते हैं। मैं असत्य नहीं कहता और न अधर्म में मेरी रुचि है। माताजी ने ऐसा ही कहा है और यही मेरे मन में है। महाभारत आदि पर्व १८७। २१-२६)।

द्रुपद को इससे सन्तोष न हुआ और वे युधिष्ठिरजी से यह कहकर चले गये कि तुम, कुन्ती और मेरा पुत्र धृष्टद्युम्न आपस में निर्णय करके जो कहोगे वैसा ही कल करूंगा।

इस जटिल प्रश्न के समाधान के लिये व्यास, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, युधिष्ठिर और कुन्ती की पंचायत बैठती है। व्यासजी

सरपंच बने। उन्होंने द्रुपद को 'पंचेन्द्राख्यान' सुनाया। आदि पर्व १६०।१-२ में कहा है कि—

'उस पर्वत-गुफा में जो मुंदे हुए इन्द्र थे वे ही पाँच पाण्डव हुए हैं। यह द्रौपदी लक्ष्मी का अवतार है। उसके लिए इनकी पत्नी होना पहले से नियत है। हे द्रुपद ? मैं तुमको दिव्य चक्षु देता हूँ। इन पाण्डवों के पूर्व को तुम अपने नेत्रों से स्वयं देख लो।'

ऐसा होने पर द्रुपद ने वह महान आश्चर्य स्वयं देखा और व्यासजी के पैर पकड़ कर कहा— 'हे महर्षि ? जो दैव का विधान है उसे नहीं टाला जा सकता है। भाग्य की लगाई गाँठ कौन खोल सकता है ? यहाँ अपने लिये कुछ भी नहीं होता।'

पं० उमापति द्विवेदी (पं० नकछेदराम शर्मा) भी द्रौपदी के पाँच पति मानते हैं।★

महाभारत और मार्कण्डेय पुराण के 'पंचेन्द्राख्यान' भिन्न-भिन्न हैं। आदि पर्व के "पंचेन्द्राख्यान" में एक छोटी कहानी व्यासजी के मुख से और जुड़वा दी गई है। किसी ऋषि कन्या ने पति के लिये शिव का तप किया और पाँच बार 'पति देहि' यह वरदान मांगा। यही कन्या द्रौपदी हुई।

किसी धूर्त कथक्कड़ ने 'पंचेन्द्राख्यान' में इस क्षेपक कहानी को मिलाने की धृष्टता की है।

द्रौपदी के पाँच पति के सम्बन्ध में विचार विमर्श—

महाभारत के अध्ययन से ज्ञात होता है कि व्यास जी के सरपंच बनने पर द्रौपदी पाँचों पाँडवों के साथ ब्याही गई थी।

★'सनातन धर्मोद्धार' पूर्वार्द्ध, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ७२१-७२२।

यह विवाह वेद व धर्म शास्त्र के प्रतिकूल था। इस कलङ्क को मिटाने के लिये मार्कण्डेय पुराण व महाभारत में काल्पनिक व मिथ्या कथायें बनाई गई हैं।

महाभारत के कई स्थलों पर द्रौपदी के पाँच पति माने गये हैं।×

१—नारदजी ने पाँचों पाँडवों को कहा था— 'पंचाली भवतामेका धर्मपत्नी यशस्विनी। यथा वो नात्र भेदः स्यात् तथा नीतिर्विधीयताम्' (आदि पर्व २०७।१८)

अर्थात् 'यशस्विनी पाँचाली आप पाँचों की एक पत्नी है, जिस प्रकार आप लोगों में परस्पर भेद-फूट न हो जाय, वैसी नीति कर लें।'

यदि द्रौपदी पाँचों की पत्नी न होती तो नारद जी का यह कथन व्यर्थ था।

२—द्यूतक्रीडा के समय शकुनि ने युधिष्ठिर को कहा— 'अस्ति ते वै प्रिया राजन्नलह एकोऽपराजितः। पणस्व कृष्णां पाँचालीं तयाऽऽत्मानं पुनर्जय' (सभापर्व ६५।३२)

यदि द्रौपदी एकमात्र अर्जुन की पत्नी होती, तो शकुनि युधिष्ठिर को द्रौपदी का दाव लगाने के लिए न कह सकता। युधिष्ठिर के भी उसके पति होने से वह उससे स्वेच्छा-व्यवहार कर सकता है, तब उसका पंचपतित्व स्पष्ट हो गया।'

३—महाप्रस्थान में जब पांडव हिमालय की ओर गए तब रास्ते में सबसे पूर्व द्रौपदी हिम में गिरी। भीमसेन ने उस का कारण पूछा (महाप्रस्थानिक पर्व २।३-५)। तब युधिष्ठिर ने कहा—'पक्षपातो महानस्या विशेषेण धनंजये। तस्यैतत्फल मद्यैषा भुङ्क्ते पुरुष सत्तम (महाप्रस्थानिक पर्व २।६)=इसका

×महाभारत के ये सभी प्रमाण गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित तृतीय संस्करण के हैं। —लेखक

पक्षपात धनंजय (अर्जुन) से विशेष था। आज उसी का फल भोग रही है।'

यहाँ द्रौपदी का पंच-पतित्व स्पष्ट है। यदि अर्जुन ही एकमात्र उसका पति होता, पाँचों पाँडव नहीं तब तो उसका अर्जुन में पक्षपात उचित ही था। पाँचों की पत्नी होने पर तो उसका एक के साथ पक्षपात अनुचित होने से गिरना अनिवार्य था।

४—शकुनि दुर्योधन से कहता है—'तै लब्धा द्रौपदी भार्या द्रुपदश्च सुतैः सह। सहायः पृथिवीलाभे वासुदेवश्च वीर्यवान्' (सभा पर्व ४८।४)

यहाँ शकुनि ने भी पाँडवों की भार्या द्रुपद की लड़की द्रौपदी के लिए कहा है।

५—'तथा ब्रुवन्ती करुणं सुमध्यमा भर्तॄन् कटाक्षैः कुपितानपश्यत्। सा पाँडवान् क्रोपरीत देहान् संदीपयामास कटाक्षपातैः' (सभापर्व ६७।४२)।

वैशम्पायन के इस वचन में क्रुद्ध द्रौपदी ने अपने पतियों की ओर तिरछी दृष्टि से देखा। 'सा भर्तॄन् पाँडवान्' इस पद से द्रौपदी पाँचों की पत्नी सिद्ध होती है।

६—'साधारणी च सर्वेषाँ पाण्डवानामतिन्दिता। जिनेन पूर्व चानेन पाँडवेन कृतः पणः (सभापर्व ६८।२३)

'एतत् सर्व विचार्याहं मन्ये न विजिताभिमाम्' (सभापर्व ६८।२४)।

विकर्ण के इस वचन से द्रौपदी सब पाँडवों की समान पत्नी थी।

७—कर्ण ने निन्दा करते हुए कहा था—

'एको भर्ता स्त्रिया देवैर्विहितः कुरुनन्दन। इयं त्वनेक वशगा बन्धकीति विनिश्चिता (सभापर्व ६८।३५)

यदि द्रौपदी एकमात्र अर्जुन की पत्नी होती, पाँचों की नहीं, तो कर्ण को ऐसी निन्दा करने का साहस न होता कि— 'स्त्री का एक ही शास्त्रानुसार भर्तार होता है, पर द्रौपदी तो अनेकों की स्त्री है।'

८—'महाप्राज्ञः सौमकिर्यज्ञसेनः कन्याँ पाँचालीं पाँडवेभ्यः प्रदाय। अकार्षीद् वै सुकृतं नेह किंचित् क्लीबाः पार्थाः पतयो याज्ञसेन्याः। (सभा पर्व ७७।१०)

यहाँ द्रौपदी को दुःशासन ने पाण्डवों की पत्नी कहा है।

९—कुन्ती वनवास के गमन के समय द्रोपदी को उपदेश देती है— 'वत्से शोको न ते कार्यः प्राप्येदं व्यसनं महत्। स्त्री धर्माणामभिज्ञासि शीलाचारवती तथा।' (सभापर्व ७९।४)

'न त्वाँ सन्देष्टुमर्हामि भर्तृन प्रति शुचिस्मते।'

(सभापर्व ७९।५)।

यहाँ 'भर्तृन्' इस बहुवचन से द्रौपदी पाँचों की समान पत्नी सिद्ध होती है।

पाँचों पाँडवों को इन्द्र का ही रूप बतलाना मार्कण्डेय पुराण कर्ता की भूल है या इस कलङ्क-कालिमा को दूर करने के लिये कहा गया है।

द्रौपदी का पंचपतित्व वेद-विरुद्ध है :—

'यदेकस्मिन् यूपे द्वे रशने परिव्ययति तस्मादेकोद्वे जाये विन्देत। मन्नैकाँ नाँ दूयोर्यूपयोः परिव्ययति तस्मान्नैका द्वौपती विन्देत।' —[कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता काँड ६, प्रपा० ६, अनु० ४]+

+सन् १८५१ ई० में 'आनन्दाश्रम मुद्रणालय पूना' में मुद्रित व प्रकाशित 'सायण भाष्य समेत' पृष्ठ २४७६-२४७७

अर्थ—'एक खूंटे में दो रस्सी बाँधी जाती हैं, इसलिए एक पुरुष दो स्त्रियों को प्राप्त कर सकता है। पर एक रस्सी दो खूंटों में नहीं बाँधी जाती, इसलिए एक स्त्री दो पति नहीं कर सकती।'

यहाँ 'बहुपतित्व' का निषेध है। अतः द्रौपदी का एक ही समय 'पंचपतित्व' का अधार्मिक कार्य है।

'तस्मादेकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति न हैकस्या बहवः सहपतयः।'

[गोपथ ब्राह्मण उत्तरभागे प्र० ३। कण्डिका २०, ऐतरेय ब्राह्मण, तीसरी पंचिका, दूसरा अध्याय २३×]

अर्थ—इसलिए एक पुरुष की बहुत सी स्त्रियाँ होती हैं, एक स्त्री के साथ अनेक पति नहीं होते।

इसकी विवेचना करते हुए पं० मित्र मिश्र जी 'वीर मित्रोदय' में लिखते हैं—

'अथाधिवेदगत् तदुक्तमैतरेय ब्राह्मणे—'एकस्य बहवो जाया भवन्ति मेकस्ये बहवः सहपतय इति' सह शब्द सामर्थ्याद् क्रमेण पत्यन्तरं भवतीति गम्यते। अतएव 'नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ। पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयत इति' मनुना स्त्रीणामपि पत्यन्तरं स्मर्यते।'

[वीर मित्रोदय अधिवेदन प्रकरणम्][१८]

अर्थ—अब अधिवेदन (बहु विवाह) का प्रकरण आरम्भ

×तुलना करो, प० सत्यव्रत जी सामश्रमी कृत 'ऐतरेयालोचनम्' द्वितीय संस्करण, कलकत्ता पृष्ठ ८४

१८. कविरत्न प० अखिलानन्द शर्मा कृत 'वैधव्य विध्वंसन-चम्पूः' प्रथमवारम्, पृष्ठ ६७ व ६८। (तुलना करो)

करते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि 'एक पुरुष की अनेक स्त्रियाँ हो सकती हैं परन्तु एक स्त्री के साथ अनेक पति नहीं हो सकते।' 'सह शब्द के सामर्थ्य से क्रम पूर्वक पत्यन्तर का होना सिद्ध होता है। तभी तो 'नष्टे मृते प्रव्रजिते' इस पद्य में मनु ने भी स्त्रियों के पत्यन्तर का विधान किया है।

इससे प्रकट होता है कि एक पति के रहते स्त्री को कभी दूसरा पति नहीं करना चाहिये। पति के मरने, सन्यास लेने, नपुँसक होने, पतित होने पर स्त्री दूसरा पति कर सकती है। पं० मित्र मिश्र मनुस्मृति का प्रमाण देते हैं, परन्तु आधुनिक मनुस्मृति में 'नष्टे मृते प्रव्रजिते' श्लोक नहीं है। पहले मनुस्मृति में यह श्लोक था, अन्यथा 'मनुनास्मर्यते' यह वे न लिखते।

पं० माधवाचार्य ने 'पराशरस्मृति भाष्य' में इस श्लोक को मनु का वचन लिखा है।

वैदिक सिद्धान्त—ऐतरेय व गोपथ ब्राह्मण का मत वेद विरुद्ध है। वेदों में एक पुरुष को एक पत्नी और एक पत्नी को एक पति एक समय में रखने का विधान है।

मार्कण्डेय पुराण में यह ढोंग किया है कि इन्द्र ने अपने शरीर के कई अंश बना लिए, जिन्हें धर्म, वायु तथा स्वयं इन्द्र ने कुन्ती में तथा अश्विनीकुमारों ने माद्री में रखकर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को उत्पन्न किया क्योंकि योगीश्वर अपने शरीर बहुत बना लिया करते हैं।

(अध्याय ५ श्लोक २५)

यह वेद विरुद्ध है।

'अभित्वा मनु जातेन दधामि मम वाससो।
यथासौ मम केवलो नान्यासां कीर्त याश्चन ॥'

[अथर्ववेद काँड ७, सूक्त ३७, मन्त्र १]

अर्थ—'[हे स्वामिन् !] (मनुजातेन) मननशील मनुष्यों में प्रसिद्ध (मम वाससा) अपने वस्त्र से (त्वा) तुझे (अभिदधामि) मैं बाँधती हूं। (यथा) जिससे तू (केवलः) केवल (मम) मेरा (असः) होवे, (च न) और (अन्यासाम्) अन्य स्त्रियों का (न कीर्तयाः) तू न ध्यान करे।

भावार्थ—विवाह में विद्वानों के बीच वस्त्र का गठबंधन करके वधू और वर दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि पत्नी पतिव्रता और पति पत्नीव्रत होकर गृहस्थ आश्रम को प्रतिज्ञा पूर्वक निर्वाह करें।'[१९]

अतः इस वेद मन्त्र में एक पुरुष को एक ही स्त्री से विवाह करने का विधान है।

आधुनिक विद्वानों के विचार—

पं० देवीदत्त शुक्ल लिखते हैं—

'एक स्त्री के अनेक पति करने की प्रथा शुरू-शुरू में उन चन्द्रवंशी आर्यों में थी जो हिमालय से नये नये आये थे। वे अनेक पति एक ही परिवार के सगे भाई होते थे। भारतीय आर्यों का मत पहले से ही इस प्रथा के प्रतिकूल था। महाभारत के समय भारतीय आर्यों में यह प्रथा बिल्कुल न थी। **महाभारतकार के लिये एक द्रौपदी का पांच पाण्डवों की स्त्री होना एक पहेली ही था और उसका निराकरण करने के लिये इसने महाभारत में दो-तीन कथाएं मिला दी हैं।**'[२०]

---

१९ प० क्षेमकरणदास त्रिवेदी कृत 'अथर्ववेद भाष्यम्' सप्तम काण्डम्, प्रथमावृत्तौ, पृष्ट १५९६-१५९७।

२०. 'महाभारत-मीमाँसा' पृष्ट ७७ (सरस्वती सीरीज नं० ३६ इण्डियन प्रेस लि०, प्रयाग द्वारा प्रकाशित)

राव बहादुर श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य, एम० ए० एल-एल० बी० लिखते हैं—'एक स्थान में रमेशचन्द्र दत्त ने इतना कबूल किया है कि भारती-युद्ध का होना तो सम्भव है, परन्तु पाँडवों का होना असम्भव है, क्योंकि पाण्डवों की कल्पना केवल सद्गुणों के उत्कर्ष की कल्पनामात्र है। परन्तु यह कथन भी गलत है। यह नहीं कहा जा सकता कि महाभारत में पाँडवों का जो इतिहास है वह केवल सद्गुणों के वर्णन से भरा हुआ है। उदाहरणार्थ, पाँच भाइयों ने मिलकर एक स्त्री के साथ विवाह किया। यह वर्णन कुछ सद्गुण वर्णन नहीं कहा जा सकता। वैदिक साहित्य के समय आर्यों में ऐसा रिवाज नहीं था। वैदिक ऋषियों ने स्पष्ट कहा है कि जिस प्रकार यज्ञ-स्तम्भ के चारों ओर अनेक रशनायें बाँधी जा सकती हैं, उसी प्रकार एक पुरुष के लिये अनेक स्त्रियां हो सकती हैं, परन्तु जिस तरह एक ही रशना अनेक यूपों से नहीं बांधी जा सकती, उसी तरह एक स्त्री के लिये अनेक पति नहीं हो सकते। कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय एक स्त्री के अनेक पतियों का रिवाज नहीं था तो फिर इन काल्पनिक पाँडवों ने ऐसा विवाह कैसे किया? सच बात तो यह है कि पाँडव किसी प्रकार काल्पनिक नहीं हैं। भीम ने रणभूमि में दुःशासन का लहू पिया था। यह शास्त्र के विरुद्ध भयानक कार्य उसने क्यों किया? सारांश, पांडव कुछ सद्गुणों के अवतार नहीं बनाये गये हैं बरन् वे साधारण मनुष्यों के समान ही चित्रित हैं।[२१]'

पुनः—'अनेक स्त्रियों से एक पुरुष के विवाह की रीति

---

२१ 'महाभारत मीमांसा' पृष्ठ ८२–८३ (सन् १९२० ई० में श्री बालकृष्ण पाँडुरंग ठकार, म० वि० चिपलूणकर मण्डली के स्वामी बुधवार पेंठ, न० १७३, पूना द्वारा प्रकाशित)

वैदिक काल से लेकर महाभारत के समय तक, न्यूनाधिक परिमाणों में प्रचलित थी, परन्तु एक स्त्री के अनेक पति करने की प्रथा शुरू २ में उन चन्द्रवन्शी आर्यों में थी जो हिमालय से नये नये आये थे। द्रौपदी के उदाहरण से यह बात माननी पड़ती है।.....

भारती आर्यों में पहले से ही इस प्रथा के विषय में तो प्रतिकूल मत था। उपर्युक्त वैदिक वचन के आधार पर यह बात पहले लिखी जा चुकी है। कुछ चन्द्रवंशी आर्यों के द्वारा लाई हुई वह प्रथा भरतखण्ड में प्रचलित नहीं हुई। महाभारत के समय भारती आर्य लोगों में वह बिल्कुल न थी। महाभारतकार के लिये एक द्रौपदी का पाँच पाँडवों की स्त्री होना एक पहेली ही था। और इसका निराकरण करने के लिए सौति ने महाभारत में दो-तीन कथायें मिला दी हैं। विशेषतः कुन्ती का बिना देखे भाले यह आज्ञा दे डालना कि जो भिक्षा ले आये हो उसे बाँट लो और तदनुसार पांचों भाइयों का एक ही स्त्री को अपनी २ स्त्री बना लेना बहुत ही विचित्र है। युधिष्ठिर के पूर्वोल्लिखित कथनानुसार मानना चाहिये कि पूर्व समय में यह प्रथा कुछ लोगों में थी। परन्तु ऊपर सौति ने जो प्रयत्न किया है, उससे यह भली भाँति सिद्ध है कि महाभारत के समय वह प्रथा इस भरतखण्ड से उठ गई थी।'[२२]

दोनों ही विद्वान् 'द्रौपदी के पंचपतित्व' को वेद-विरुद्ध बतला रहे हैं।

अतः 'मार्कण्डेय पुराण' में उत्तर देनेका जो प्रयास किया है, वह वेद विरुद्ध है।

---

२२. वही पृष्ठ २२६–२३०।

श्री बलदेव की तीर्थयात्रा और मद्यपान का दोषारोपण

जैमिनि के तीसरे प्रश्न कि बलदेव को ब्रह्महत्या कैसे लगी और उन्होंने तीर्थयात्रा द्वारा उसका प्रतिकार कैसे किया था ? इस प्रश्न का धरातल सामान्य था और इसके निवारण के लिए धर्मपक्षियों ने बलराम की मनोवृत्ति का सूचक एक उपाख्यान सुना दिया (मार्कण्डेय पुराण अ० ६) जो इस प्रकार है:—

'जब बलराम ने अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण की अत्यधिक प्रीति जानी तो उनको सोचना पड़ा कि अब क्या करना अच्छा है। कृष्ण के बिना अकेला दुर्योधन के निकट कदापि न जाऊंगा और पांडवों का पक्ष अवलम्बन कर अपने ही जामाता तथा शिष्य पृथ्वीपति दुर्योधन को कैसे मारूं ? अतएव जब तक कौरव पाँडव का ध्वंस न हो, तब तक आप तीर्थों में भ्रमण करके आत्मा को पवित्र करूं। बलराम जी मन में इस प्रकार स्थिर कर हृषीकेश, पार्थ और दुर्योधन को आमन्त्रण पूर्वक अपनी सेना से द्वारका को चले गये।'

'गत्वा द्वारवतीं रामोहृष्टपुष्ट जनाकुलाम् ।
श्वीगन्तव्येषुतीर्थेषुपपोपान हलायुधः ॥६॥
पीतपानो जगामाथरेवतोद्यानमृद्धिमत् ।
हस्ते गृहीत्वासमदांरेवतीमप्सरी पमाम् ॥७॥
स्त्री कदम्बक मध्यस्थो ययौमतः पदास्खलन् ।
ददर्श चवन वीरोरमणीमनुत्तमम् ॥८॥

[मार्कण्डेय पुराण अ० ६]

अर्थ—'शौरि बलराम जी ने हृष्ट पुष्ट मनुष्यों से भरी

द्वारावती नगरी में जाकर तीर्थ यात्रा के करने का विचार किया और ताड़ी का रस पिया ॥६॥

वह पान करने के पीछे अप्सरा के समान सगर्वा रेवती का हाथ पकड़ कर अनेक प्रकार की सम्पत्ति से पूर्ण रैवत उद्यान में गये ॥७॥

वह मद्यपान से मत्त हो रहे थे, इस कारण स्त्रियों से परवेष्टित होकर गमन करने पर भी मग में उनके पैर डगमगाते थे। अनन्तर बीरवर बलराम जी ने उस अति उत्तम रमणीय रैवतक वन को देखा ॥८॥

वहां सूती जी पुराणों की कथा सुना रहे थे। उस समय बलराम जी ने नशे में अपने हल से सूत जी का वध कर दिया।

समीक्षा—रेवतोद्यान का वर्णन सोलह श्लोकों में वर्णक के ढंग पर किया गया है। जहां ये वर्णक आते हैं, वे बाद में जोड़े गये हैं। रेवतोद्यान के वर्णन में ४२ वृक्ष, १७ पक्षी और कुछ पुष्पों के नाम आये हैं। अतः ये बाद के अंश हो सकते हैं।

बलराम जी का ताड़ी, मद्यपान करना वेद विरुद्ध है। पुराणकार ने महापुरुष पर कलङ्क लगाया है।

मांस, मद्य, जूआ और व्यभिचार, ये चार बातें मांस वर्ग की हैं। इन चारों के सेवन का निषेध वेद में किया है, वह मन्त्र अब देखिये—

यथा मांसं यथा सुरा यथाऽक्षा अधिदेवने।
यथा पुंसो वृषण्यतः स्त्रियां निहन्यते मनः॥

[अथर्ववेद ६।७०।१]

'जैसा मांस, जैसा मद्य और जैसा जूआ है उसी प्रकार पुरुष का मन स्त्री में (निहन्यते) निस्सन्देह मारा जाता है।' अर्थात् जिन व्यवहारों से मानव का मन गिर जाता है, अथवा

पतित हो जाता है वैसे चार व्यवहार हैं—माँस भक्षण, सुरापान जूआ खेलना और व्यभिचार करना। इनसे मनुष्य पतित हो जाता है। इस कारण इनको कोई भला मनुष्य न करे। यह 'वर्ग का निषेध' होने के कारण इनमें से किसी एक का पूर्ण निषेध करने से सब अन्यों का निषेध स्वयं हो जाता है। देखिये एक का निषेध—

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व। —[ऋ० १०।३४।१३]

'जूआ मत खेल, खेती कर' इस मन्त्र में जूआ मत खेल, यह पूर्ण निषेध है। यह जूआ पूर्वोक्त मांस वर्ग में तीसरा है। जब एक का पूर्ण निषेध होता है तो तत्सम अन्य जो जो उस वर्ग में परिगणित हों उन सबका निषेध स्वयं हो जाता है। इस पद्धति से पूर्वोक्त चारों का निषेध एक दम हो गया।.....[२३]

पं० शिव शर्मा जी महोपदेशक[२४] तथा पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड[२५] ने भी इसी प्रकार अर्थ किया है। पुराण में भी लिखा है—

'स्तेनः सुरापो मित्रध्रुब्रह्महा गुरुतल्पगः।
स्त्री राजपितृ गोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे॥'

[श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध ६, अ० २, श्लोक ६]

२३—'गोमेध' (पूर्वार्द्ध) पृष्ठ ६४-६५ (सन् १६२७ ई० में स्वाध्याय मण्डल, औंध द्वारा प्रकाशित)।

२४—'मद्यपान में ही पाप है' पुस्तिका, पृष्ठ ५ सं० २००५ वि० में श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा, लखनऊ द्वारा प्रकाशित।

२५—'वेदों का यथार्थ स्वरूप' पृष्ठ ४६७-४६८ (स० २०१४ वि० में प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार द्वारा प्रकाशित)।

पं० रामतेज पांडेय शास्त्री कृत टीका— 'चोर, मद्यप, मित्रद्रोही, ब्रह्महत्यारा, गुरु-स्त्री-गामी, स्त्री,राजा, माता-पिता तथा गौ का हत्यारा तथा और भी जितने पापी हैं।'[२६]

यहां भागवतकार ने 'मद्यप' को 'पापी' बतलाया है। अतएव बलरामजी पापी हुए। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार बलरामजी ताड़ी, शराब पीते थे, इससे पापी थे। वे स्वयं शराब की बुराई भी करते हैं। इससे उनका कथन 'वदतो व्याघात' है।

'धिगमर्षं तथामह्यामति मानमशीलताम्।
यैराविष्टेनसुमहन्मया पापमिदं कृतम् ॥३४॥

[मार्कण्डेय पुराण अ० ६]

अर्थ—'रे अमर्ष ! तुमको धिक्कार है, मद्य को धिक्कार अत्यन्त मान को धिक्कार और अत्यन्त साह को भी धिक्कार है, क्योंकि इन्हीं सब में आसक्त होकर मैंने ऐसे महापाप का का अनुष्ठान किया है।'

मार्कण्डेय पुराण के श्रवण व पाठ से पाप से मुक्ति

"चतुः प्रश्नसमोपेतं पुराणंह्येतदुत्तमम् ॥
श्रुत्वापुनश्चतेपापंकल्पकोटिशतैः कृतम् ॥ १४ ॥
ब्रह्महत्यादिपापानियान्यन्यान्यान्यभूमानिच ॥
तानि सर्वाणिनश्येतितृणंवातहतंयथा ॥ १५ ॥
पुष्करे दानजं पुण्यं श्रवणादस्यजायते ॥

२६—'श्रीमद्भागवत' महापुराणम् साम्बयिकी भाषा टीका सहितम्' पृष्ठ ५१६

सर्ववेदाधिकफलं समाप्त्याचाधिगच्छति ।। १६ ।।
(मार्कण्डेय पुराण, अ० १३४)

अर्थः—चार प्रश्न युक्त यह उत्तम मार्कण्डेय पुराण श्रवण करने से सौ करोड़ कल्प के किये पाप नष्ट होते हैं ।।१४।। और ब्रह्महत्यादि संम्पूर्ण महापाप व अन्यान्य सब अमंगल वायु से हत हुए तृण के समान इसके पाठ से नष्ट हो जाते हैं ।।१५।। पुरस्कार में दान करने से जो पुण्य होता है, इसके सुनने से भी वैसा ही पुण्य लाभ होता है इसकी समाप्ति में सम्पूर्ण वेदपाठ के समान फल प्राप्त होता है ।। १६ ।।

समीक्षा—केवलमार्कण्डेय पुराण के श्रवण व पाठ से पाप नष्ट होना निरर्थक है। पाप का फल अवश्य भोगना पड़ता है। यदि पुराणोंके श्रवण व पठन से पाप नष्ट होने लगे तो पापियों की संख्या अधिक हो जाय और लोग निःसंकोच होकर पाप करेंगे।

पुराणों के प्रचार के लिए किसी ने ऐसा लिख डाला है:—

"मार्कण्डेय पुराण" में वर्णित विचित्र विद्यायें—

अनुलेपन विद्याः—(मार्कण्डेय पु० अ० ५८ श्लोक ८ से २०) में ऐसे विशिष्ट पाद लेप औषधि का संकेत है जिसके लगाने से आधे दिन में ही सहस्र योजन की यात्रा करने की शक्ति आती थी। इसके उपयोक्ता एक ब्राह्मण की चर्चा है, जो सब औषधियों के प्रभाव का जानने वाला और मन्त्र विद्या में पारदर्शी था। वह वरुणा नदी के तट पर अरुणास्पद नगर में स्थित सच्चरित्र वेद वेदाङ्ग पारदर्शी ब्राह्मण के यहाँ अतिथि रूप में ठहरा और पारदर्शी ब्राह्मण के पैर में लेप लगा दिया। इस प्रभाव से वह हिमालय में पहुँच गया। वहाँ विशेष शीतलता के लगने से उसका परमौषधीसम्भूत पादलेप धुल गया जिससे यात्रा की वह अलौकिक शक्ति नष्ट हो गई।

(२) **पद्मिनी विद्या**:--इस विद्या के प्रभाव से निधिगणों को वश में किया जाता था, जिससे उसके ज्ञाता को कभी भी धन की कमी नहीं होती थी।

कलावती द्वारा राजा स्वरोचिष को इस पद्मनी विद्या देने की कथा मार्कण्डेय पुराण अ० ६२, श्लोक १४ से १७ तक में है।

(३) **स्वेच्छारूपधारिणी विद्या**:--'मार्कण्डेय पुराण अध्याय २ में इसका सुन्दर दृष्टान्त है। जब कन्धर ने अपने भ्राता कंक के वध का बदला चुकाने के लिए विद्युद्रूप राक्षस का वध किया तब उसकी पत्नी मदनिका ने कन्धर के निकट आत्म समर्पण किया (श्लोक २८) मदनिका को यह विद्या आती थी कि वह इच्छानुसार रूप धारण कर लेती थी। वह कन्धर के घर में आकर पक्षिणी बन गई (श्लोक ३०)।

महिषासुर इस 'स्वेच्छारूपधारिणी विद्या'को जानताथा। मार्कण्डेय पुराण अध्याय ८०, श्लोक २१ में महिष, श्लोक ३० में सिंह, श्लोक ३१ में हाथी का रूप धारण करने का वर्णन है।

(४) **सर्वभूतरुतविद्या** :-- इस विद्या के प्रभाव से मनुष्य सभी प्रकार के अमानवीय जीव जन्तुओं की ध्वनियों का अर्थ समझ लेता है। मन्दार विद्याधर की कन्या विभावरी ने यह राजा स्वरोचिष् को उनको औषधियों से रोग मुक्त होने पर प्रतिदान स्वरूप प्रदान की थी। (मार्कण्डेय पुराण, अ० ६१,श्लोक३)

(५) **रक्षोघ्न विद्या** :-- यज्ञों को अपवित्र बनाने वाले राक्षसों को दूर करने की विद्या। मार्कण्डेय पुराण अ०६७ श्लोक २१ में वर्णित है।

(६) **अस्त्रग्राम हृदय विद्या** :-- इस विद्या के द्वारा अस्त्रों का रहस्य जाना जाता था जिससे शत्रुओं का पराजय अनायास होता था 'मनोरमा' नामक विद्याधरी के इस विद्या के ज्ञान की

कथा मार्कण्डेय पुराण' अ० ६३ में है, जिसने अपने आक्रमणकारी राक्षस से मुक्ति पाने के लिए राजा स्वरोचिष् को यह विद्या प्रदान की थी [मार्कण्डेय पुराण, अ० ६०, श्लोक २९]

समीक्षा :— मार्कण्डेय पुराण में वर्णित उपर्युक्त आख्यानों पर कोई विश्वास नहीं कर सकता है। 'मायाजाल' (जादू, इन्द्रजाल विद्या) भी कह सकते हैं। वेदों में ऐसी विद्याओं की चर्चा नहीं है।

मार्कण्डेय पुराण में व्याकरण की अशुद्धियाँ

महर्षि पाणिनि ने **'सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे'** (अष्टा० १.१.१६) इस सूत्र में 'अनार्ष शब्द का प्रयोग वेद से भिन्न ग्रन्थों के लिए किया है। अतः 'आर्ष' प्रयोग केवल वेद की भाषा के निमित्त मानना ही पाणिनि की सम्मति प्रतीत होती है। पाणिनि के व्याकरण के विरुद्ध पुराणों में अनेकों अशुद्धियाँ हैं। मार्कण्डेय पुराण में भी निम्नलिखित अशुद्धियाँ हैं :—

(१) **'निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद्गदतोमम ॥**

(मा० पु० अ०७८ श्लोक १)

यहां 'निशामय' अशुद्ध है। 'निशमय' होना चाहिए।

(२) **'पश्यैतादुष्टमय्येव विशंत्योमद्विभूतयः।'**

(मा० पु० अ० ८७,श्लोक३)

इन अन्तिम पदों को 'पश्य' का कर्म होना चाहिए। ये द्वितीया में न होकर प्रथमा में प्रयुक्त हैं। इन पर प्राकृत की छाया है। यहाँ 'सुवन्त' में 'अपाणिनीय प्रयोग' है।

(३) **'आयान्तंचण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमति भीषणम्।'**

(मा० पु०, अ० ८५,श्लोक७)

'सैन्य' नपुंसक है। अतः विशेषण को पुंलिग में न होकर 'आयात' नपुंसक लिंग में होना चाहिए।

(४) 'घण्टा स्वनेन तन्नादमंबिकाचाप्यबृंहयत् ।'

(मा० पु०,अ० ८५,श्लोक ८)

यहाँ 'उपबृंहयत्' में भूतकालिक 'अड्' का अभाव है ।

'भर्त्तव्यारक्षितव्याच भार्याहि पतिना सदा ।'

(मा० पु० अ० १८,श्लोक६८)

'पत्या, के स्थान पर पतिना 'हरिणा' के समान । 'पतिः समास एव' सूत्र का व्यत्यय यहाँ है ।

(६) 'तथैव भर्तारमृते भार्या धर्मादिसाधने ।

(मा० पु० अ० १८,श्लोक ७२)

ऋते योगे पंचमी के स्थान पर द्वितीया का प्रयोग है ।

मार्कण्डेय पुराण में वैदिक सिद्धान्त

जिस प्रकार अन्य पुराणों में वैदिक सिद्धान्त हैं उसी प्रकार मार्कण्डेय पुराण में भी हैं :—

(१) मार्कण्डेय पुराण में 'नमस्ते' का प्रयोग—

(क) देवताओं द्वारा रवि को नमस्ते—

'नमस्ते ऋक्स्वरूपायसामरूपाय ते नमः ।'

(मा० पु० अ० ७५,श्लोक २)

(ख) देवताओं द्वारा देवी को नमस्ते–

'नीतादिवंरिपुगणाभयमप्यपास्तभस्माकमुन्मदसुरारि भवनमस्ते ।' (मा० पु० अ० ८१,श्लोक२३)

(ग) देवताओं द्वारा देवी को नमस्ते—

'नमस्तस्यैनमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ।'

(मा० पु० अ० ८२,श्लोक१२)

इसी प्रकार श्लोक १३ से ३९ तक में देवों ने देवी को नमस्ते कहा है ।

(ध) महामति शान्ति द्वारा अग्नि को नमस्ते—

'नमस्तेऽनर्लपिंगाक्षनमस्तेऽस्तुहुताशन ।'

(मा० पु० अ० ८६,श्लोक४५)

(ङ.) ब्रह्माजी द्वारा आदित्य को नमस्ते—

'नमस्तेदेवरूपाय यज्ञरूपाय ते नमः ।'

(मा० पु० अ० १००,श्लोक११)

(च) अदिति द्वारा सवितादेव (सूर्यदेव) को नमस्ते—

'यद्रूपमृग्यजुःसाम्नामैक्येनतपतेतव ।
विश्वमेतत्त्रयीसंज्ञंनमस्तमैविभावसो ॥

(मा०पु० अ० १०१,श्लोक२८)

(छ) ब्राह्मणों द्वारा सूर्य (भास्कर) को नमस्ते—

'नमोनमस्तेस्तुसहस्ररश्मेसर्वस्यहेतुस्त्वमशेषकेतुः ।'

(मा०पु० अ०१०६,श्लोक७८)

(२) स्त्रियों के लिए पति ही सब कुछ है—

क्लेशेनमहतासाध्विप्राजापत्यादिकान्क्रमात् ।
स्त्रियश्चैवंसमस्तस्यनरैर्दुःखार्जितस्यवै । ६१ ॥
पुण्यस्यार्द्धापहारिण्यः पतिशुषश्रूयैवहि ।
नास्तिस्त्रीणांपृथग्यज्ञोनश्राद्धंनाप्युपोषितम् ६२ ॥
भर्तुः शश्रूषयैवैतालोकानिष्टाञ्जयंतिहि ।
तस्मात्साध्विमहाभागेपतिशुश्रूषणं प्रति ॥
त्वयामतिः सदाकार्यायतोभर्त्ता परागतिः । ६३ ॥

(मा० पु० अ० १६)

अनसूयाजी कहते हैं :—

अर्थ— 'महाक्लेश से क्रमशः प्राजापत्यादि पवित्रधाम में जाने को समर्थ होते हैं, किन्तु स्त्रियें केवल पति की सेवा से ही मनुष्य के दुःखोपार्जित इस पुण्य में अर्द्धांश को प्राप्त होती हैं ।

स्त्रियों के पक्ष में यज्ञ, श्राद्ध वा उपवास का कोई पृथक् विधान नहीं है ।।६१ । ६२ ।। यह केवल मात्र स्वामी की शुश्रूषा से ही समस्त अभिलषित लोकों में जाने को समर्थ हैं । इस कारण हे साध्वी ! हे महाभागे ! तुम स्वामी की शुश्रूषा में सदा यत्नवती होओ, क्योंकि स्वामी ही स्त्री की परम गति है ।। ६३ ।।

राजर्षि मनुजी भी कहते हैं :—

'पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ।
सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीतिचोच्यते ।

(मनुस्मृति ९ । २९)

अर्थ— 'जो (स्त्री) मन, वचन तथा काय (शरीर) को संयत रखती हुई पति का उल्लंघन नहीं करती,वह (मर कर) पतिलोकों को पाती है तथा (जीती हुई) इस लोक में सज्जनों से पतिव्रता कही जाती है ।'

(३) दम्पति का कर्त्तव्य—

भर्तव्या रक्षित व्याचभार्याहि पतिना सदा । ६९ ।
धर्मार्थकाम संसिद्ध्यै भार्या भर्तुः सहायिनी ।
याचभार्या च भर्त्ता च परस्पर मनुव्रतौ । ७० ।
तदाधर्मार्थकामानाँत्रयाणामपि संगतम् ।
कथं भार्यामृतेधर्ममर्थं वा पुरुषः प्रभो । ७१ ।
प्राप्नोतिकाममर्थंवातस्याँत्रितयमाहितम् ।
तथैव भर्तारमृतेभार्याधर्मादि साधने । ७२ ।
न समर्थात्रिवर्गोयं दाँ पत्यं समुपाश्रिताः । ७३ ।

(मा० पु० अ० १९)

अर्थ— पति को भार्या की सदा रक्षा और पालना करनी चाहिए । ६९ । भार्य्या भर्त्ता की सहायिनी होने पर सम्यक् प्रकार धर्म,अर्थ और काम की सिद्धि का निमित्त होती है । भार्या

और भर्त्ता दोनों ही जब परस्पर वशीभूत होते हैं ।७०। तभी धर्म, अर्थ और काम इन तीनों की सगति होती है। धर्मादि त्रिवर्ग भार्या में समाहित होने के कारण पुरुष जिस प्रकार भार्या के बिना कभी धर्म, अर्थ ।७१। वा लाभ करने में समर्थ नहीं होता, इसी प्रकार भार्या भी स्वामी के बिना धर्मादि साधन में ।७२। समर्थ नहीं होती क्योंकि धर्म, अर्थ और काम दोनों को सम्यक् प्रकार से आश्रय करके स्थित देखो।७३।

(४) विदुषी मदालसा का उपदेश—

मार्कण्डेय पुराण अ० २३ से लेकर ३४ तक में अपने पुत्र अलर्क को प्रजारंजन पर आश्रित राजतन्त्र, वर्णाश्रम धर्म, गार्हस्थ्य धर्म, नित्य और नैमित्तिक कर्म,देव-पूजन,आचार-परिपालन वर्ज्यावर्ज्य पदार्थ का लम्बा आदेश किया हैं। इससे ज्ञात होता है कि स्त्री और शूद्रों को वेद नहीं पढ़ना चाहिए, पौराणिकों का यह कथन सर्वथा मिथ्या ही है। पौराणिक युग में ही मदालसा जैसी विदुषी स्त्री की चर्चा मार्कण्डेय पुराण करता है इससे पौराणिकों के मुख पर ताला लग जायेगा।

(५) गृहस्थाश्रम का कर्त्तव्य—

एष धर्मोगृहस्थस्य ऋतावभिगस्तथा ।
पञ्चयज्ञविधानंतु यथाशक्ति न हापयेत् ॥ २ ॥

(मा० पु०, अ०२५)

अर्थ— ऋतुकाल में स्त्री गमन और शक्ति के अनुसार पञ्चयज्ञ का अनुष्ठान करे यही गृहस्थ का एक मात्र धर्म है।'

टिप्पण :— राजर्षि मनुजी भी इसकी पुष्टि करते हैं—

'ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा।'

(मनुस्मृति ३। ४५)

अर्थ—स्व स्त्री के साथ प्रेम करने वाला पुरुष स्त्री के ऋतुमती होने के बाद शुद्ध होने पर सम्भोग करे।"

"अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवोवलिभौ तो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥७०॥
पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः ॥७१॥

(मनुस्मृति अ० ३)

अर्थ—वेद का अध्ययन और अध्यापन करना 'ब्रह्मयज्ञ' है, माता-पिता की सेवा करना 'पितृयज्ञ' है, हवन करना 'देव-यज्ञ' है 'बलिवैश्वदेव' करना 'भूतयज्ञ' (प्राणियज्ञ) है तथा अतिथियों को भोजन आदि से सत्कार करना 'नृयज्ञ' है। यथा शक्ति इन पंच महायज्ञों को नहीं छोड़ना चाहिए।"

(५) गृहस्थाश्रम की प्रशंसा—

"मदालसोवाच ॥ वत्सगार्हस्थ्यमास्थायनरः सर्वमिदं जगत् ॥
पुष्णातितेनलोकांश्चसजयत्यभिवांछितान् ॥"

(मार्कण्डेय पु० अ० २६-३)

अर्थ—'मदालसा बोली हे वत्स ! मनुष्य गृहस्थाश्रम का अवलम्बन करके इन समस्त जीवों का पोषण करता है और उसी पुण्य के प्रभाव से समस्त वाँछित लोक प्राप्त करता है।"

टिप्पण—मनुस्मृति से भी गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता की पुष्टि होती है।

"यथानदीनदः सर्वे सागरे यान्ति संस्थिसिम् ।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥

(मनुस्मृति ६।९०)

अर्थ—जैसे नदी और बड़े-बड़े नद तब तक भ्रमते ही रहते हैं जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं होते, वैसे गृहस्थ ही के आश्रय से सब आश्रम स्थिर रहते हैं।"

"यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥७७॥

(मनुस्मृति ३।७७)

अर्थ—जिस प्रकार प्राण-वायु का आश्रय कर सब जीव जीते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ का आश्रय कर सभी आश्रम (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ व संन्यासाश्रम) चलते हैं।"

"चत्वारोह्याश्रमा देवसर्व गार्हस्थ्यमूलकः ।"

(महाभारत, शान्ति प० ३२१-२५)

अर्थ—हे देव ! चारों आश्रमों की जड़ गृहस्थ से ही हरी रहती है।"

महाकवि कालिदास ने गृहस्थ आश्रम को सब आश्रमों का हित करने में समर्थ कहा है। (रघुवंश ५।१०)

(६) अतिथि-सत्कार—

"अनित्यंहिस्थितोयस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥
तस्मिंस्तृप्तेनृयज्ञोत्थाद्दृणान्मुच्येद्गृहाश्रमी ॥२१॥
तस्यादत्त्वातुयोभुंक्ते स्वयंकिल्विषभुङ्नरः ॥
सपापंकेवलंभुंक्ते पुरीषंचान्ध जन्मनि ॥३२॥

(मार्कण्डेय पु० अ० २६)

अर्थ—"नित्य अवस्थान न करने के कारण ही ऐसे अभ्यागत को अतिथि कहा जाता है। अतिथि की तृप्ति साधन होने पर गृही नृयज्ञ अतिथियज्ञ) के ऋण से मुक्ति लाभ करता है ॥३१॥ जो पुरुष अतिथि को बिना दिए स्वय भोजन करता है वह किल्विष भोजी (पाप भोगता है) केवल पापभोगी होता हैं तथा दूसरे जन्म में वह विष्ठा भोजन करता है।"

टिप्पण—राजर्षि मनुजी कहते हैं—

"संप्राप्तायतिथये प्रदद्यादासनोदके ।

अन्नं चैव यथाशक्तिसत्कृत्य विधिपूर्वकम् ।।

(मनु० ३।९९)

अर्थ—"घर पर आए हुए अतिथि के लिए आसन, पैर धोने के लिये जल, शक्ति के अनुसार व्यञ्जनादि से संस्कृत (स्वादिष्ट) अन्न विधिपूर्वक सत्कार कर देना चाहिए।"

(७) सदाचार का लक्षण—

"गृहस्थेनसदाकार्यमाचारपरिपालनम् ।।
नह्याचारविहीनस्यसुखमत्रपरत्रवा ।।६।।"
यज्ञदानतपांसीहपुरुषस्यनभूतये ।।
भवंतियःसदाचारंसमुल्लंध्यप्रवर्त्तते ।।७।।

(मार्कण्डेय पु० अ० ३१)

अर्थ—"(मदालसा बोली)—गृहस्थ सर्वदा सदाचार का प्रतिपालन करे, जो पुरुष आचारहीन है, किसी लोक में उसको सुख मिलने की संभावना नहीं है। जो पुरुष सदाचार का उल्लंघन करके संसार मार्ग में प्रवृत्त होता है, उसका यज्ञ, दान व तपस्या सब अमंगल का कारण होता है।"

टिप्पण—मनुजी भी कहते हैं—

"आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एवच ।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ।।१०८।।
आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफल मश्नुते ।
आचारेण तु संयुक्तः संपूर्णफलभाग्भवेत् ।।१०९।।"

(मनुस्मृति अ० १)

अर्थ—"वेदों तथा स्मृतियों में कहा गया आचार ही श्रेष्ठ धर्म है, आत्महिताभिलाषी द्विज को इस (आचार के पालन) में प्रयत्नवान् होना चाहिए ।।१०८।। आचार भ्रष्ट ब्राह्मण वेद के फल को नहीं प्राप्त करता और आचारवान ब्राह्मण सम्पूर्ण वेदोक्त फल का भागी होता है।

(८) स्त्री को नग्न नहीं देखना चाहिए—

"नग्नांपरस्त्रियंनेक्षेन्नपश्येदात्मनः शकृत् ॥"

(मार्कण्डेय पु० अ० ३१ श्लोक २४)

अर्थ—पराई स्त्री को नग्न नहीं देखे और अपने मल (विष्ठा) को भी देखना अनुचित है।"

टिप्पण—मनुजी भी कहते हैं—

"उपेत्य स्नातको विद्वान्नेक्षेन्नग्नां परस्त्रियम्।
सरहस्यं च संवादं परस्त्रीषु विवर्जयेत् ॥"

(मनुस्मृति ४।३)

अर्थ—"विद्वान् स्नातक (गृहाश्रमी) समीप जाकर नंगी पर स्त्री को न देखे अर्थात् उसके पास ही न जावे और एकान्त में परस्त्री के साथ बातचीत भी न करे।"

"नाञ्जयन्ती स्वके नेत्रे न चाभ्यक्तामनावृताम्।
न पश्येत्प्रसवन्तो च तेजस्कामो द्विजोत्तमः।

(मनुस्मृति ४।४५)

अर्थ—"अपने नेत्रों में अंजन लगाती हुई, तेल आदि अभ्यक्त, वस्त्ररहित और प्रसव करती हुई स्त्री को तेज चाहने वाला द्विजोत्तम न देखे।

(९) घर को गोबर से लीपना चाहिए—

"प्रातःकालेस्त्रियाकार्यंगोमयेनानुलेपनम्।"

(मार्कण्डेय पुराण अ० ३२ श्लोक ४६)

अर्थ—प्रातःकाल स्त्रियों को गोबर से लीपना चाहिए।"

टिप्पण—गोबर से अनेक कीटाणु मर जाते हैं। घर की स्वच्छता है। अब तो वैज्ञानिकों का कहना है कि जो घर गोबर से लीपा रहता है वहाँ अणुबम का असर नहीं होता है। रूसी वैज्ञानिकों ने ऐसा अनुसन्धान किया है।

महर्षि दयानन्दजी सरस्वती भी लिखते हैं—

"गाय के गोबर से वैसा दुर्गन्ध नहीं होता जैसा कि मनुष्य के मल से। (गोमय) चिकना होने से शीघ्र नहीं उखड़ता न कपड़ा बिगड़ता, न मलीन होता है, जैसा मट्टी से मैल चढ़ता है वैसा सूखे गोबर से नहीं होता। मट्टी और गोबर से जिस स्थान का लेपन करते हैं वह देखने में अति सुन्दर होता है और जहाँ रसोई बनती है वहाँ भोजनादि करने से घी, मिष्ट और उच्छिष्ट भी गिरता है, उससे मक्खी, कीड़ी आदि बहुत से जीव मलिन स्थान के रहने से आते हैं। जो उसमें झाड़ू लेपनादि से शुद्धि प्रतिदिन न की जावे तो जानो पखाने के समान वह स्थान हो जाता है। इसलिए प्रतिदिन गोबर, मट्टी झाड़ू से सर्वथा शुद्ध रखना और जो पक्का मकान हो तो जल से धोकर शुद्ध रखना चाहिए।"[३७]

पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र, विद्यावारिधि ने "दयानन्द तिमिर भास्कर" पृष्ठ ३५६ में इस पर ऊटपटाँग लिखा है, पर मार्कण्डेय पुराण के उक्त प्रमाण को मिश्रजी ने देखा नहीं था। पुराणों के ठेकेदार होते हुए भी मार्कण्डेय पुराण का प्रमाण नहीं दिखाई दिया। 'दीपक तले अन्धेरा' कहावत मिश्रजी पर ही चरितार्थ होती है।

(१०) ओङ्कार की महिमा—

"एवं योवर्त्ततेयोगीसम्यग्योगव्यवस्थितः ॥
सव्यावर्तितुंशक्योजन्मान्तरशतैरपि ॥१॥
दृष्ट्वा चपरमात्मानं प्रत्यक्षंविश्वरूपिणम्।
विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेशंविश्वभावनम् ॥२॥

---

२७. "सत्यार्थ प्रकाश" दशमसमुल्लास।

तत्प्राप्त्र ये महत्पुण्यमोमित्येकाक्षरंजपेत् ॥
तदेवाध्ययनं तस्यस्वरूपश्रृण्वतः परम् ॥३॥
अकारश्चतथोकारोमकारश्चाक्षरत्रयम् ॥४॥

[मार्कण्डेय अ० ३६]

अर्थ—(दत्तात्रेयजी ने कहा)—इस प्रकार जो योगी सम्यक् विधान से योगयुक्त होते हैं, शतशत जन्मान्तर में भी फिर वह स्वपद से निवृत नहीं हो सकते ॥१॥ जो विश्वरूपी विश्व के ईश्वर और विश्वभावन हैं, विश्व ही जिनके पाद हैं विश्व ही जिनकी ग्रीवा और विश्व ही जिनका शिर है, योगी उन्हीं परमात्मा को प्रत्यक्ष करके ॥२॥ उनको प्राप्त करने के लिए यह पवित्र 'ओ३म्' एकाक्षर जप करे, यही उनका अध्ययन होगा, और इस ओंकार का स्वरूप श्रवण कर ॥३॥ अकार उकार और मकार, यह तीन अक्षर ही ओङ्कार स्वरूप हैं और उन्हीं को तीनों मात्रा जानना चाहिए।"

टिप्पण—परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ नाम 'ओ३म्' है। इसे 'प्रणव' भी कहते हैं। योगदर्शन में इसके जप करने का आदेश है।

'माण्डूक्योपनिषद्' में वर्णित प्रणव की चार मात्राओं का विवेचन' भी इसी प्रकार है।

"ओ३म् खम्ब्रह्म" [यजु० ४०।१७]

"ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत।" [छान्दोग्योपनिषद् १।११]

"ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वतस्योप व्याख्यानम्।"

[माण्डूक्यापनिषद् मं० १]

"···तत्रे पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥"

[कठोपनिषद् २।१५]

उक्त प्रमाणों में भी 'ओ३म्' की महिमा है। मार्कंडेय पुराण भी 'ओ३म्' का जाप बतलाता है।

(११) कुपुत्रता से अपुत्रता श्रेष्ठ है—

पितृऋण से ऊऋण होने के लिए सन्तानोत्पत्ति अनिवार्य हैं। पुत्र होने पर श्रेष्ठ समझा जाता है। पर यदि पुत्र कुपुत्र हो तो उससे अपुत्र होना ही श्रेष्ठ है। पुराणकार यही कहते हैं।

"अपुत्रतामनुष्याणांश्रेयसेन कुपुत्रता ।।७।।

[मार्कण्डेय पु० अ० ७२]

मनुष्य का पुत्रहीन होना अच्छा पर कुपुत्रवान् होना अच्छा नहीं, क्योंकि—

कुपुत्रोहृदयायासंसर्वदाकुरुते पितुः। मातुश्च स्वर्ग
संस्थांश्चस्वपितॄन्पातयत्यवधः ।।८।।
सुहृदांनोपकारायपितृणांचनतृप्तये ।।
पित्रो दुःखायधिग्जन्मतस्य दुष्कृतकर्मणः ।।९।।
धन्यास्तेतनयायेषांसर्वलोकाभिसंमताः ।।
परोपकारिणः शान्ताः साधुकर्मण्यनुव्रताः ।।१०।।
अनिर्वृतंतथामन्दं परलोक पराङ्मुखम् ।।
नरकायनसद्गत्यै कुपुत्रालम्बिजन्मनः ।।११।।
करोति सुहृदांदैन्यमहितानां तथा मुदम् ।।
अकाले च जरांपित्रोः कुसुतः कुरुते ध्रुवम् ।।१२।।"

[मार्कण्डेय पु० अ० ७२]

अर्थ—क्योंकि कुपुत्र माता पिता के हृदय में सदा ही कष्ट प्रदान करता है और स्वर्ग में वास करने वाले अपने पितरों को भी नीचे गिराता है अर्थात् सुख से रहने वाले पितरों को भी दुःखी करता है ।।८।। इसके द्वारा मित्रों का भी उपकार नहीं होता और पितृ पुरुषों को भी तृप्ति नहीं होती। माता-पिता के दुःख का कारण दुष्कर्मकारी कुपुत्र के जन्म को धिक्कार है ।।९।। जिसकी सन्तान प्रतिष्ठित, परोपकारी, शान्त प्रकृति

और सत्कर्म में अनुरक्त है, वही धन्य है ॥१०॥ परलोक पराङ्-मुख, कुपुत्रावलम्बी और यह मन्द जन्म केवल नरक के लिए है, सद्गति के लिए नहीं ॥११॥ कुपुत्र, मित्रों की दीनता, अपकारी शत्रुओं का आनन्द और अकाल में पिता माता को बुढ़ापा निश्चय ही लाता है ॥१२॥

(१२) भारतवर्ष कर्मभूमि है—

"तत्कर्म भूमिर्नान्यत्र संप्राप्तिः पुण्यपापयोः ॥
एतत्प्रधानंविज्ञेयं यत्र सर्वप्रतिष्ठितम् ॥"

[मार्कण्डेय पुराण अ० ५२ श्लो० २२]

अर्थ—"वह कर्म भूमि है, दूसरे किसी स्थान में पाप पुण्य की प्राप्ति नहीं है, इसमें सब प्रतिष्ठित रहने के कारण भारतवर्ष (धर्म=कर्त्तव्य) प्रधान कहकर प्रसिद्ध है।"

"प्रयांतिकर्मभूर्ब्रह्मन्नायलोकेषुविद्यते ॥
देवानामपिविप्रर्षेसदाएषमनोरथः ॥"

[मार्कण्डेय पुराण अ० ५४ श्लो० ६२]

अर्थ–"हे ब्रह्मन्! हे विप्रर्षे! समस्त लोकों में यह भारतवर्ष ही एकमात्र कर्मभूमि है। देवतागण भी सदा अभिलाषा करते हैं।"

ब्रह्मपुराण २७।२, विष्णुपुराण २।३।२, २।३,२२, महाभारत वनपर्व १८१।३१, में भी भारतवर्ष को 'कर्मभूमि' कहा गया है।

(१३) 'वाग्धेनु'—

"सर्वस्याधारभूतेयं वत्सधेनुस्त्रयीमयी ॥
यस्यांप्रतिष्ठितंविश्वं विश्वहेतुश्चयामता ॥६॥
ऋक्पृष्ठासौयजुर्मध्यासावक्त्र शिरोधरा ॥
इष्टापूर्तविषाणाचसाधुसूक्ततनूरुहा ॥७॥

शान्तिपुष्टिशकृन्मूत्रा वर्णपाद प्रतिष्ठिता ।
आजीव्यमानाजगतांसाऽक्षयानापचीयते ॥ ८ ॥
स्वाहाकारः स्वधाकारो वषट्कारश्चपुष्क ।
हंतकारस्तथैवान्यस्तस्याः स्तन चतुष्टयम् ॥ ९ ॥
स्वाहाकारं स्तनं देवाः पितरश्चस्वधामयम् ।
मुनयश्च वषट्कारं देवभूत मुरेतराः ॥ १० ॥
हंतकारं मनुष्याश्चपिबतिसततंस्तनम् ।
एवमाप्यामयत्येषादेवादीनखिलाँस्त्रयी ॥ ११ ॥
(मा० पु० अ० २६)

अर्थ— (मदालसा अपने पुत्र अलर्क को उपदेश देती हुई कहती है) :—

हे पुत्र ! गृहस्थ ही वेदमयी धेनुरूप में सबका आधारभूत होकर रहता है, अखिल ब्रह्माण्ड उस धेनु में ही प्रतिष्ठित और यह धेनु ही ब्रह्माण्ड का रथ है ॥ ६ ॥ ऋग्वेद इस धेनु की पीठ, यजुर्वेद मध्य, सामवेद मुख और ग्रीवा इष्टापूर्त्त, उसका सींग साधुसूक्त रोम ॥ ७ ॥ शान्ति और पुष्टिकर्म उसका मल-मूत्र एवं वर्ण और आश्रम ही इस धेनु की प्रतिष्ठा है, इस धेनु का क्षय नहीं है । सुतराँ समस्त विश्व को अवलम्बन पूर्वक जीवन धारण करने पर भी उसका क्षय होने की आशङ्का नहीं है ॥ ८ ॥ हे पुत्र ! स्वाहा, स्वधाकार और हन्त यह इस धेनु के चार स्तन हैं । ९ । इन चार स्तनों में देवगण, स्वाहाकार, पितृगण व षट्-कार । १० । और मनुष्यगण सदा हन्तकार स्तनपान करते हैं । हे पुत्र ! इस प्रकार से यह त्रयीमयी धेनु ही सबकी तृप्ति सम्पादन करती है । ।११ !

टिप्पण— यहाँ 'त्रयी' को धेनु के रूप में मानकर एक रूपकालङ्कार वर्णन किया गया है । इसका मूल उपनिषद् में है—

"वाचं धेनुमुपासीत तस्याश्चत्वार स्तनाः स्वाहाकारो वषट्कारो हन्तकारः स्वधाकारस्तस्यै द्वौ स्तनौ देवा उपजीवन्ति स्वाहाकारं च वषट्कारं च हन्तकारं मनुष्याः स्वधाकारं पितरस्तस्याः प्राणऋषभो नमो वत्सः ॥ १ ॥"

(बृहदारण्यकोपनिषद् अ० ५ ब्रा० ८)

अर्थ— "वेदरूपी वाणी धेनु (गौ) के समान है, जिस प्रकार गौ के चार स्तन होते हैं उसी प्रकार वाणी रूप धेनु के भी स्वाहाकार, वषट्कार, हन्तकार तथा स्वधाकार यह चार स्तन हैं जिनमें से स्वाहाकार तथा वषट्कार रूप दो स्तनों द्वारा अग्निहोत्रादि कर्मानुष्ठ न रूप दुग्ध का दोहन करते हुए देवता विद्वान् जीवित रहते हैं और जो उक्त धेनु का हन्तकार नामक तीसरा स्तन है उसी के आश्रय मनुष्यों का जीवन है अर्थात् जो अन्य वैदिक कर्मों के अनुष्ठान में किसी कारण वशात् अवकाश न मिलने से केवल अतिथि यज्ञ को पूर्ण करते हैं उनका जीवन भी पवित्र हो जाता है,और जो स्वधाकार नामक चतुर्थ स्तन है उस के आश्रय पितर (केवल कर्मी लोग) अपना जीवन पूर्ण करते हैं अर्थात जीवित पितरों के उद्देश्य से पितृयज्ञ का अनुष्ठान करने वाले पुरुष पितृलोक को प्राप्त होते हैं और जिस प्रकार वृषभ से वत्स (बछड़ा) उत्पन्न करके धेनु दुग्ध का स्रवण करती है, क्योंकि प्राण के बल से ही वाणी का उच्चारण होता और मन द्वारा सकल्प कर के स्वाहाकारादि स्तनोंसे पुण्यरूप दूधका दोहन किया जा सकता हैं, जो इस प्रकार वेदवाणी की धेनुरूप से उपासना करते हैं उन्ही पुरुषों को पुण्यात्मक अमृत का लाभ होता है, अन्यों को नहीं।"

उपनिषद् की इस वाग्रूपी धेनु सम्बन्धी दृष्टि की चर्चा 'मार्कण्डेय पुराण' में है। उपनिषत् में धेनु के चार स्तन और

देव-मनुष्य-पितरों से उसके उपभोग की बात कही गई है। धेनु के प्राण और मन की चर्चा उपनिषत् में है, पुराण में नहीं है।

'वाक्' के स्थान पर पुराण में 'त्रयी' शब्द है। पुराण में 'त्रयी' का विशेषण 'सर्वाधारभूता' है। इसको 'विश्वहेतु' और 'विश्वप्रतिष्ठा' भी कहा गया है। इसको स्वरूपतः क्षय-उपचय-भी कहा गया है।

उपनिषत् में धेनु के केवल स्तनों का उल्लेख है, वहाँ पुराण में धेनु के पृष्ठ मध्य, वक्त्र, विषाण, लोम, विष्ठा, मूत्र के साथ वैदिक पदार्थों का सम्बन्ध दिखाया गया है।

उपनिषत् में देवों का सम्बन्ध स्वाहा वषट् से, मनुष्यों का सम्बन्ध हन्त से, पितरों का सम्बन्ध स्वधा से कहा गया है। यहां पुराण और उपनिषत् में कुछ भेद है। 'मार्कण्डेय पुराण' में देव का सम्बन्ध केवल स्वाहा से और वषट् का सम्बन्ध मुनि और 'देवभूत सुरेतर' [मा० पु० अ० २६ श्लोक १०] से कहा गया है।

(१४) वर्ण परिवर्तन—

'पृषध्र' की कथा विष्णु, भागवत, हरिवंश में भी है कि मनु के पुत्र क्षत्रिय पृषध्र ने गुरु की गाय का वध अज्ञान से कर दिया। इस पर गुरु के पुत्र ने उसे शाप दिया कि तू शूद्र होजा, वह शूद्र हो गया। गुरु ने पृषध्र को रात में गोरक्षा के लिए नियत किया। एक दिन जब रात को वर्षा होरही थी एक व्याघ्र ने गौओं के बाड़े में प्रवेश किया और एक गायको पकड़ लिया। पृषध्र उस व्याघ्र को मारने के लिए तलवार लेकर गया। अंधेरे में उसे सूझा नहीं, भूल से गाय को मार दिया। इस पर गुरु के पाभ्रव्य नामक पुत्र के अत्यन्त क्रोध से राजा को शाप देने को तैयार हुआ। राजा ने उसे 'शूद्रवत्' कहा। इस पर उसने राजा

को शाप दिया कि 'तुम शूद्र ही होगे।' और गुरु के मुख से पढ़ी हुई सम्पूर्ण ब्रह्म विद्या नष्ट हो जायगी।

"·····जगामस्वाश्रमंसोऽपिवृषध्रः शूद्रतामगात् ।"

— (मा० पु० अ० १०८ श्लोक २५)

अर्थ— उसको आश्रम में ले गए। इसके उपरान्त वह वृषध्र भी शूद्रता को प्राप्त हुए।'

टिप्पण :— पौराणिक लोग जन्मना वर्ण-व्यवस्था मानते हैं पर यहां तो पुराणकार कर्मणा वर्ण व्यवस्था मानकर ही क्षत्रिय को शूद्र लिख रहे हैं।

गुण-कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था वैदिक सिद्धान्त है जिसकी पुष्टि मार्कण्डेय पुराण से हो रही है।

*

हमारी शुद्ध साहित्य सीरीज !

अपने महान् भारत और पूर्वजों का गौरवमय सत्य इतिहास जानने के लिये अवश्य पढ़ें और पढ़ायें —

* १—	शुद्ध रामायण	६)५०
* २—	शुद्ध महाभारत	६)००
३—	शुद्ध मनुस्मृति	६)५०
४—	शुद्ध कृष्णायन	२)००
५—	शुद्ध गीता	२)००
६—	शुद्ध हनुमच्चरित अजि० २) रु०,सजि० २)	५०
७—	शुद्ध तुलसी रामायण (मानस पीयूष)	४)००

वैदिक सद्धर्म प्रचार के लिये इन्हें एक २ घर और एक २ व्यक्ति तक पहुँचाइये। सत्साहित्य प्रचार सर्वोत्तम राष्ट्रसेवा है।

* यह दोनों ग्रन्थ समाप्त हैं। शीघ्र ही छपेंगे।